विशाख

ऐतिहासिक नाटक

जयशङ्कर 'प्रसाद'

१९८६

५५

प्रकाशक

भारती-भण्डार

(पुस्तक-प्रकाशक और विक्रेता)

बनारस सिटी

परिवर्द्धित और स्वरलिपियुक्त

द्वितीय संस्करण

मूल्य १)

प्रकाशक का वक्तव्य

'प्रसाद'जी के इस नाटक का यह नवीन, परिवर्तित एवं परिवर्द्धित संस्करण हम बड़ी प्रसन्नता से पाठकों को भेंट करते हैं।

कई वर्ष पूर्व लिखी गई, नाटकीय क्षेत्र में 'प्रसाद'जी की यह पहिली कृति है। यद्यपि इसके पहिले उनके 'राज्यश्री', 'करुणालय', 'प्रायश्चित' आदि नाट्य निबन्धों की रचना हो चुकी थी, किन्तु वे रूपकमात्र थे। नाटकीय कला सम्बन्धी उनकी स्वतंत्र विशेषता तो पहिले-पहिल इसी 'विशाख' द्वारा हिन्दी-संसार में प्रकट हुई। यहाँ 'प्रसाद'जी की नाटकीय लेखन-शैली को विस्तृत विवेचना करनी संभव नहीं; 'अजातशत्रु', 'स्कंदगुप्त विक्रमादित्य', 'नागयज्ञ' और 'कामना' प्रभृति ग्रन्थों के मर्म्मज्ञ पाठक उनकी विशेषताओं का मर्म्म भलीभाँति हृदयंगम करते हैं।

विशाख 'प्रसाद'जी की पहिली कृति होने के कारण कुछ प्राचीन शैली में भी निबद्ध है, किन्तु साथ ही पाठकगण उनकी स्वतंत्र नाटकीय प्रतिभा के विकास का पूर्ण उद्गम भी इसी में पाएँगे, अतएव, इस नाटक का महत्त्व और मूल्य अत्यधिक बढ़ जाता है।

संगीताचार्य्य श्री० लक्ष्मणदास 'मुनीमजी' की बाँधी इस नाटक के गानों की सुन्दर स्वरलिपियाँ भी इस संस्करण की एक विशेषता है।

आशा है, पाठकों को यह पूर्ण प्रीतिकर होगा।

परिचय

भारत के प्राचीन इतिहास की जैसी कमी है वह पाठकों से छिपी नहीं है। यद्यपि धर्मग्रंथों में सूत्र रूप से बहुत सी गाथाएँ मिलती हैं किंतु वे क्रमबद्ध और घटना परम्परा से युक्त नहीं हैं। संस्कृत साहित्य में इतिहास नाम से लब्धप्रतिष्ठ केवल राजतरंगिणी नामक ग्रंथ ही उपलब्ध होता है। कल्हण पंडित ने अपने पूर्व के कई इतिहासों का और उनके लेखकों का उल्लेख किया है पर वे अब नहीं मिलते। यह नाटक, राजतरंगिणी की एक ऐतिहासिक घटना पर अवलम्बित है। जिसका समय निर्धारण करना एक कठिन और इस नाटक से स्वतंत्र विषय होगा। फिर भी उसका कुछ दिग्दर्शन करा देना इस परिचय का एक अंग होगा।

राजतरंगिणी का क्रमबद्ध इतिहास तृतीय गोनर्द से आरंभ होता है। जिसे कि कल्हण से पहले के विद्वानों ने लिखा है। इसके पहले के बावन राजाओं का नाम नहीं मिलता, क्योंकि युधिष्ठिर के समकालीन आदि गोनर्द से काश्मीर का इतिहास क्रमबद्ध करने के लिये इतने राजा जान-बूझ कर भुला दिये जाते हैं, अथवा वे कोई वास्तविक राजा थे ही नहीं, केवल समय को पूरा करने के लिये उनके अस्तित्त्व की कल्पना कर ली गई है। कल्हण से पहले के विद्वानों ने इस विस्तृत समय को २२६८ वर्ष रक्खा है। कल्हण ने, कल्यब्द के ६५३ वर्ष बीतने पर भारत युद्ध हुआ, ऐसा मान कर, उस समय को १२६६ वर्ष की संख्या में घटा दिया है। और आदि गोनर्द से लेकर दूसरे गोनर्द तक और लव से लेकर शचीनर तक, फिर अशोक से लेकर अभिमन्यु तक कुल १७ राजाओं की सूची उन बावन विस्तृत राजाओं में से खोज निकाली गई है, जिसे संभवतः पद्ममिहिर हेलराज इत्यादि पंडितों ने ताम्रशासन और विजयस्तम्भ और आज्ञापत्र तथा दानपत्र इत्यादि देखकर जैसे-तैसे अपना मत ठीक किया था। इनका राज्यकाल जो कि इस ग्रंथ में निर्धारित है, कहाँ तक ठीक है इसकी समीक्षा करनी होगी।

नवाविष्कृत ऐतिहासिक युग का प्रसिद्ध सम्राट् अशोक मौर्य अब अनजाने हुए इतिहास का बनावटी राजा न रहा। इसका समय अच्छी तरह निर्द्धारित हो चुका है। राजतरंगिणी के मत से इसका राज्यकाल गत कलि १७३४ से आरंभ होकर गत कलि

१७९५ तक है। कलि-संवत्, ई० सन् से ३१०१ वर्ष पहले आरंभ होता है। ३१०१ में से १७३४ घटा देने से प्रकट होता है कि ईसा से १३६७ वर्ष पहले राजतरंगिणी के मत से अशोक हुआ। अशोक आदि दो-चार प्रसिद्ध और ऐतिहासिक राजाओं का समय १५० वर्ष उस माने हुए १२६६ विस्मृत वर्ष में से निकाल कर यदि वह काल्पनिक ११०० वर्ष इस १३६७ बी० सी० में से निकाल दिया जाय तो २६७ बी० सी० अशोक का राज्यकाल आधुनिक ऐतिहासिकों के मत से मिलता-जुलता-सा दिखाई पड़ता है।

एक लेखक महोदय ने राजतरंगिणी के अशोक को अशोक मौर्य न होने का कोई प्रमाण न देकर केवल ११०० वर्ष का अंतर देखकर उसे एक दूसरा अशोक मान लेना चाहा है। जिसका कि कोई प्रमाण नहीं है और जब कि उसके बाद पाँच-छः राजाओं के अनंतर कनिष्क का नाम आता है जिसे कि अब ऐतिहासिक लोग प्रसिद्ध कुशान सम्राट् मानते हैं और नागार्जुन का उसका समकालीन होना बौद्ध लोग भी स्वीकार करते हैं जैसा कि राजतरंगिणी में भी मिलता है, तब हम इस राजतरंगिणी के १३६७ बी० सी० वाले अशोक को इतिहास सिद्ध २६७ बी० सी० का क्यों न मान लें। क्योंकि मेरी समझ में विस्मृत राजाओं का ११०० वर्ष का समय ही यह सारा भ्रम डाले हुए है। इतिहास को, प्राचीन सम्पन्न करने का प्रयत्न रूपी ११०० वर्ष का काल्पनिक समय निकाल देने से यह इतिहास क्रम से चला चलेगा।

आगे भी चलकर क्षति-पूर्ति स्वरूप १०० से लेकर ३०० वर्ष तक के काल्पनिक समय राजतरंगिणी में कई जगह मिलेंगे। जैसे रणादित्य का ३०० वर्ष तक राज्य करना। इसी रणादित्य के बाद विक्रमादित्य और बालादित्य का नाम आता है। जिनका समय ४९५ और ५३७ वि० स० मिलता है।

ऊपर के विवरण से निर्द्धारित किया गया है कि विस्मृत राजाओं का काल्पनिक काल—जैसा कि अशोक और कनिष्क का समय मिलान करने से—मन गढ़न्त सा है।

राजतरंगिणी के मत से इस नाटक के प्रधान पात्र नरदेव का राजकाल वि० पू० ९७० है। उसमें ५७ वर्ष जोड़ देने से १०२७ ई०पू० समय निकलता है। वह काल्पनिक ११०० वर्ष का काल घटा देने से यह घटना ईसा की पहली शताब्दी की प्रतीत होती है। या इससे एक या आधी शताब्दी और पीछे की हो सकती है।

इस प्रकार यह घटना संभवतः १८०० वर्ष पहले की है। उस समय की रीति-नीति का परिचय होना कठिन तो है फिर भी जहाँ तक हो सका है उसी काल का चित्रण करने का प्रयत्न किया गया है।

पात्रों में प्रेमानंद और महापिंगल आदि दो-एक कल्पित हैं, जो मुख्य काल के विरुद्ध नहीं।

लेखक

पात्र

पुरुष

१. नरदेव	...	काश्मीर का राजा
२. महापिङ्गल	...	राजा का सहचर
३. सुश्रवा	...	नागसर्दार
४. विशाख	...	ब्राह्मण नागरिक
५. प्रेमानन्द	...	सन्यासी
६. सत्यशील	...	कानीर विहार का बौद्ध महन्त

स्त्री

१. चन्द्रलेखा	...	सुश्रवा की कन्या
२. इरावती	...	चन्द्रलेखा की बहिन
३. रमणी	...	सुश्रवा की बहिन
४. तरला	...	महापिङ्गल की स्त्री
५. रानी	...	नरदेव की स्त्री

नाग, भिक्षु, दौवारिक, दासी, सैनिक, प्रहरी इत्यादि

विशाख

प्रथम अंक

१

(स्थान—काश्मीर का एक कुंज, पास ही हरा-भरा खेत)

(शिलाखण्ड पर बैठा हुआ पथिक विशाख)

विशाख—(आप-ही-आप)—

वरुणालय चित्त शान्त था,
अरुणा थी पहली नई उषा :
तरुणाब्ज अतीत था खिला,
करुणा की मकरन्द वृष्टि थी ,
सुखमा बनदेवता बनी—
करती आदर थी अनन्त की,
कल कोकिल कल्पनावली,
मुद में मङ्गल गान गा रही,

स्मृतियाँ सब जन्म-जन्म की—
खिलती थीं सुमनावली बनी ;
वह कौन ? कहाँ ? न ज्ञात था,
सुख में केवल व्यस्त चित्त था ।
वह बीत गया अतीत था,
तम सन्ध्या उसको छिपा गई,
न भविष्य रहा समीप में—
किसको चञ्चल चित्त सौंप दूँ ?

शैशव ! जब से तेरा साथ छूटा तब से असन्तोष, अतृप्ति और अटूट अभिलाषाओं ने हृदय को घोंसला बना डाला। इन विहङ्गमों का कलरव मन को शान्त होकर थोड़ी देर भी सोने नहीं देता। यौवन सुख के लिए आता है—यह एक भारी भ्रम है। आशामय भावी सुखों के लिये इसे कठोर कर्म्मों का सङ्कलन ही कहना होगा। उन्नति के लिये मैं भी पहली दौड़ लगाने चला हूँ। देखूँ, क्या अदृष्ट में है। थोड़ा विश्राम कर लूँ, फिर चलूँगा।

(वृक्ष के सहारे टिक जाता है)

(चन्द्रलेखा अपनी बहिन इरावती के साथ मलिन वेश में उसी खेत में आती है, सेम की फलियाँ तोड़ती है।
विशाख उसे देखता है।)

विशाख—(मनमें)—ऐसा सुन्दर रूप और वेश ऐसा मलिन!

सलोने अङ्ग पर पट हो मलिन भी रङ्ग लाता है।
कुसुम-रज से ढका भी हो कमल फिर भी सुहाता है॥

विधाता की लीला! ठीक भी है, रत्न मिट्टियों में से ही निकलते हैं। स्वर्ण से जड़ी हुई मञ्जूषाओं ने तो कभी एक भी रत्न उत्पन्न नहीं किया। (फिर देखकर) इनकी दरिद्रता ने इन्हें सेम की फलियों पर ही निर्वाह करने का आदेश किया है।

(फलियाँ तोड़कर वृक्षों के नीचे विश्राम करती हुई दोनों गाती हैं—)

चन्द्रलेखा—

सखी री! सुख किसको हैं कहते?
बीत रहा है जीवन सारा केवल दुख ही सहते॥
करुणा, कान्त कल्पना है बस; दया न पड़ी दिखाई।
निर्दय जगत, कठोर हृदय है, और कहीं चल रहते॥
सखी री! सुख किसको हैं कहते?

विशाख—(सामने जाकर)—देवियो! आप कौन हैं? क्या कृपा करके बतावेंगी कि आपका दुःख किस प्रकार बाँटा जा सकता है? सौन्दर्य्य में सुर-सुन्दरियों को भी लज्जित करनेवाली आप लोग क्यों दुखी हैं? और, ये फलियाँ आप क्यों एकत्र कर रही हैं?

इरावती—(भयभीत होकर)—क्षमा कीजिये, मैं अब कभी न इधर आऊँगी। दरिद्रता ने विवश किया है इसी से आज सेम

की फलियाँ, पेट भरने के लिये, अपने बूढ़े बाप की रक्षा करने के लिये, तोड़ ली हैं। यदि आज्ञा हो तो इन्हें भी रख दूँ।

(सब फलियाँ उछाल देती हैं)

चन्द्रलेखा—हा निर्दय दैव !

विशाख—डरो मत, डरो मत। मैं इस कानन या क्षेत्र का स्वामी नहीं हूँ। मैं तो एक पथिक हूँ। आप लोगों का शुभ नाम क्या है, परिचय क्या है ?

इरावती—हम दोनों सुश्रवा नाग की कन्यायें हैं। किसी समय मेरा पिता इस रमण्याटवी प्रदेश का स्वामी था, और तब सब तरह के सुखों ने हम लोगों के शैशव में साथ दिया था। पर हा !

विशाख—उन बीती बातों को सोच कर हृदय को दुखी न बनाओ। अपना शुभ नाम सुनाओ।

इरावती—मेरा नाम इरावती है और इस मेरी छोटी बहिन का नाम चन्द्रलेखा है।

विशाख—सच तो-

घने घन-बीच कुछ अवकाश में यह चन्द्रलेखा-सी।
मलिन पट में मनोहर है निकष पर हेमरेखा-सी।

(चन्द्रलेखा लज्जित होती है, हट जाती है)

इरावती—भद्र, हम लोग दारिद्र्य-पीड़िता हैं, फिर आप भी उपहास करके अपमानित करते हैं !

विशाख—देवी, क्षमा करना। मेरा अभिप्राय ऐसा कभी नहीं था-(रुककर)-हाँ, आप लोगों की यह दशा कैसे हुई ?

इरावती—देव ! हम नागों की सारी भू-सम्पत्ति हरण करके इस क्षत्रिय राजा ने एक बौद्धमठ में दान कर दिया है।

विशाख—(स्वगत)-क्यों न हो, इसी को तो आज-कल धर्म्म कहते हैं। किसी भी प्रकार से उपार्जित धन को धर्म्म में व्यय करने का अधिकार ही कहाँ है। ऐसों को धर्मात्मा कहें कि दुष्टात्मा, क्योंकि वे यह नहीं जानते कि दूसरों का गला काट कर कोई धर्म्मशाला वा मठ या मन्दिर बना देने से ही उनका पाप नहीं धो जाता है। अच्छा फिर—

इरावती—हम लोग तबसे अन्नहीन, दीन दशा में, इस कष्टमयी स्थिति में जीवन व्यतीत कर रही हैं। इन क्षेत्रों का अन्न यदि गिरा पड़ा भी कभी बटोर ले जाती हूँ तो भी डर कर, छिप कर।

विशाख—आप लोगों के पिता से कहाँ भेंट हो सकती है ? अभी तो मैं तक्षशिला से पढ़कर लौटा आ रहा हूँ, संसार से मेरा अभी कुछ समझा हुआ नहीं है। इस लिये व्यवहार की दृष्टि से यदि मेरा कोई प्रश्न अनुचित भी हो तो, देवियो ! क्षम्य है।

इरावती—फिर आप क्यों इस पचड़े में पड़ते हैं ?

विशाख—उपाध्याय ने यह उपदेश दिया है कि दुखी की

अवश्य सहायता करनी चाहिये। इस लिये मेरी इच्छा है कि मेरी सेवा आपलोगों के सुखके लिये हो।

इरावती—भद्र ! आपकी बड़ी दया है ! किन्तु आप इस झञ्झट में न पड़ें।

विशाख—(स्वगत)-मैं तो कभी न पड़ता यदि इस संसार में पदार्पण करने की प्रतिपदा तिथि में यह चन्द्रलेखा न दिखलाई पड़ती। (प्रकट)-संसार में रह कर कौन इससे अलग हो सकता है !

चन्द्रलेखा—(स्वगत)-धन्य पर-दुःख-कातरता !

इरावती—रमणकहृद पर मेरे पिता रहते हैं, वहीं आप उनसे मिल सकते हैं। (बौद्ध महंत को आते देख)-यह महन्त बड़ा ही भयानक है। आप इससे सचेत रहियेगा। वह देखिये आ रहा है अब हम लोग चली जायँ, नहीं तो......

विशाख—घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है, आप लोग जायें। मैं अभी कुछ उससे बातचीत करूँगा।

(चन्द्रलेखा और इरावती जाती हैं। बौद्ध भिक्षु का प्रवेश—)

महंत—(आप-ही-आप) ऐसा खेत किसी का भी नहीं है। किन्तु हाँ, जानवरों से बढ़कर उन लोगों से इसकी रक्षा होनी चाहिये—जो दो पैर के पशु हैं !-(गाता है—)

जीवन भर आनन्द मनावे
खाये पीये जो कुछ पावे।

लोग कहें छोड़ो यह तृष्णा—लिपट रही है साँपिन कृष्णा
सुखद बना संसार कुहक है, क्यों छुटकारा पावे । खाये०
जननी अपनी हाथों से जब, बालक को ताड़न करती तब
रोकर करुणाप्लुत हो सुत फिर माँ को उसी बुलावे । खाये०
उसी तरह से दुख पाकर भी, मानव रोकर या गाकर भी
संसृति को सर्वस्व मानता, इसमें ही सुख पावे । खाये०

विशाख—(सामने आकर)-महास्थविर, अभिवादन करता हूँ।

भिक्षु—धर्म्मलाभ हो। किन्तु यह तो कहो, इस तरह तुम यहाँ क्या छिपे हो ! मेरा खेत तो···

विशाख—चर नहीं गया, आप घबड़ायें नहीं।

भिक्षु—नहीं नहीं; इससे हमारे-जैसे अनेक धार्म्मिक और निरीह व्यक्तियों का निर्वाह होता है, इस लिये इसकी रक्षा करनी उचित है।

विशाख—आपको यह भूमि किसने दी है ? आपका इस पर कैसे अधिकार है ?

भिक्षु—(क्रोध से)-तू कौन ? राजा का साला कि नाती कि घोड़ा ; तुझसे मतलब ?

विशाख—मैंने अच्छी तरह विचार कर लिया है कि आपको इतनी भूमि का अन्न खाकर और मोटा होने की आवश्यकता नहीं।

भिक्षु—और तुझे है ? चला जा सीधे यहाँ से, नहीं तो

अभी खेत की चोरी में पकड़ा दूँगा । यह लम्बी-चौड़ी बहस भूल जायगी । अरे दौड़ो दौड़ो !

विशाख—(एक ओर देखकर)—अरे वह देखो भेड़िया आया !

(भिक्षु घबड़ा कर गिर पड़ता है और विशाख चला जाता है)

भिक्षु—(इधर-उधर देख कर उठता हुआ)—धत्तेरे की ! धूर्त्त बड़ा दुष्ट था । चला गया, नहीं तो मारे डण्डों के मारे डण्डों के—(डण्डा पटकता है)—खोपड़ी तोड़ डालता !

(सुश्रवा नाग गाता हुआ आता है—)

उठती है लहर हरी हरी—
पतवार पुरानी, पवन प्रलय का, कैसा किये पछेड़ा है
उठती है लहर हरी हरी ।
निस्तब्ध जगत है, कहीं नहीं कुछ फिर भी मचा बखेड़ा है
उठती है लहर हरी हरी ।
नक्षत्र नहीं हैं कुहू निशा में, बीच नदी में बेड़ा है
उठती है लहर हरी हरी ।
'हाँ पार लगेगा घबराओ मत' किसने यह स्वर छेड़ा है !
उठती है लहर हरी हरी ।

भिक्षु—ए बेड़ा बखेड़ा ! खेत मत रौंद, नहीं तो पैर तोड़ दूँगा ।

सुश्रवा—नहीं महाराज, मैं तो पगडंडी से जा रहा हूँ ।

भिक्षु—मुझी को अंधा बनाता है !

सुश्रवा—हा दुर्दैव ! यह हमारे पितृ-पितामहों की भूमि थी, उसी पर चलने में यह कदर्थना !

भिक्षु—क्या ! क्या ! क्या ! तेरे पितृ-पितामहों की भूमि थी ? अरे मूर्ख, भूमि किसकी हुई है ? यदि तेरे बाप-दादों की थी तो मेरे भी लकड़दादा, नकड़दादा या किसी खपड़दादों की रही होगी। क्या तू इस पर चल-फिर कर अपना अधिकार जमाना चाहता है ? निकल जा यहाँ से, चला जा—(उसे ढकेलता है, सुश्रवा गिर कर उठता है—)

सुश्रवा—जब तुमको इतनी तृष्णा है तो फिर मैं तो बाल-बच्चोंवाला गृहस्थ हूँ ; यदि मेरे मुँह से दबी हुई आत्मश्लाघा निकल ही पड़ी तो फिर उस पर इतना क्रोध क्यों ? तुम जानते हो, मैं वही सुश्रवा नाग हूँ जिसके आतङ्क से यह रमणक प्रदेश थर्राता था ! अभी भी तुम्हारे जैसे कीड़ों को मसल डालने के लिये इन वृद्ध बाहों में कम बल नहीं है !

भिक्षु—(डरता हुआ भी घुड़क कर)-चुपचाप चला जा, नहीं तो कान सीधे कर दिये जायँगे।

सुश्रवा—क्या मैंने कुछ अपराध किया है जो दब कर चला जाऊँ ? ठहर जा, अभी कचूमर निकालता हूँ !-(डण्डा उठाता है)

भिक्षु—(स्वगत)-डण्डा तो मेरे पास भी है पर काम गले से लेना चाहिये। (प्रकट) अरे दौड़ो, यह मुझे मारता है; कोई

विहार में है कि नहीं ई ई ई ? (पाँच सात युवा भिक्षु निकल पड़ते हैं और उस वृद्ध सुश्रवा को पकड़ लेते हैं। दौड़ती हुई चन्द्रलेखा आती है—)

चन्द्रलेखा—मैं तो खोज रही थी, अभी ही घर से निकल पड़े हैं। जाने दो। क्षमा करो। हमें मार लो। हमारे बूढ़े पिता को छोड़ दो!

(घुटने के बल बैठ जाती है)

भिक्षु—अर र र, यह कहाँ से आ गई! छोड़ो जी, उस बूढ़े को छोड़ दो। जब यह स्वयं कहती है तो उसे छोड़ दो, इसे ही पकड़ लो!

(सब भिक्षु आपस में इङ्गित करते हुए बूढ़े को छोड़ कर चन्द्रलेखा को पकड़ ले जाते हैं। महन्त भी जाता है। सुश्रवा मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है।)

२

(स्थान—राजद्वार के समीप छोटा-सा उपवन)

(महापिङ्गल और विशाख)

महापिङ्गल—क्यों हमको जानते हो—हम कौन हैं ?

विशाख—क्षमा कीजियेगा, अभी तक पूरी जानकारी नहीं है फिर भी आप मनुष्य हैं, इतना तो अवश्य कह सकूँगा।

महापिङ्गल—मूर्ख महामूर्ख ; विदित होता है कि अभी तुम कोरे बछड़े हो ! पाठशाला का जूआ फेंक कर या तोड़-ताड़कर भगे हो ! राजसभा के विनय-पाठ तुमको सिखाये नहीं गये क्या ? बताओ तो तुम्हारा कौन शिक्षक है, उसे अभी शिक्षा दूँगा !

विशाख—मेरे शिक्षक आपकी तरह कोई दुमदार वा उपाधि-धारी जीव नहीं हैं। उन्हीं के यहाँ से तुम्हारे ऐसे कोड़ियों पशु, राजमान्य मनुष्य, बनाये जाते हैं।

महापिङ्गल—मैं उन हामराज की, जिनके यहाँ बुद्धि नाटकों के स्वगत की तरह रहती है, आँख नाक और कान हूँ; तुम नहीं जानते ?

विशाख—आँख, नाक, और कान ! कदापि नहीं; हाँ, चरण वा चरण-रज हो सकते हो।

महापिङ्गल—चुप रह, क्या बड़बड़ करता है !

विशाख—धन्य धन्य ! ऐसे शब्द मुँह से निकालना आप

ही को आता है। भला कहिये, बुद्धि नाटकों के स्वगत की तरह कैसी ?

महापिङ्गल—जैसे नाटकों के पात्र स्वगत जो कहते हैं वह दर्शक-समाज वा रङ्गमंच सुन लेता है पर पास का खड़ा हुआ दूसरा पात्र नहीं सुन सकता, उनको भरत बाबा की शपथ है; उसी तरह राजा की बुद्धि, देश-भर का न्याय करती है पर राजा को न्याय नहीं सिखा सकती।

विशाख—फिर आप लोगों का कैसे निर्वाह होता है !

महापिङ्गल—अरे लण्ठ ! अभी मूर्खता का क. ख. ग. घ. पढ़ रहा है ! तुझे यह पूछना चाहिये कि हमारे ऐसे दुमदारों के बिना विचारे राजा की क्या स्थिति होती ? वे कैसे रहते ? उठ-बैठ सकते कि नहीं ? उनकी समझ की ज्वाला में आहुती पड़ती कि नहीं ?

विशाख—अस्तु अस्तु, वही कहिये, वही कहिये।

महापिङ्गल—महाराज को हमारे ऐसे यदि दो-चार तोषा-मोदकारी सामन्त न मिलते तो उन्हें बुद्धि का अजीर्ण हो जाता—और उनकी हाँ-में-हाँ न मिलने से फिर भयानक बात की संग्रहणी हो जाती और निरीह प्रजा से अनेक विधानों से कर न मिलने के कारण उन्हें उपवास करके ही अच्छा होना पड़ता।

विशाख—(बात को दूसरे रुख़ पर ले जाने के लिये)-मेरा मन गाना सुनना चाहता है।

महापङ्गिल—तो क्या तुमने यह कोई डेरा समझ रखा है ?

बिशाख—खेद, साहित्य और सङ्गीत तो सुयोग्य नागरिकों को ही आता है। हमने आपके गाने की बड़ी प्रशंसा सुनी है, इसी से—हाँ

महापिङ्गल—(प्रसन्न होकर)-तुम रसिक भी हो। अच्छा अच्छा, सुनाऊँगा, ठहरो चित्त उसके अनुकूल हो जाय-(खाँसता है)

विशाख—(अलग)-मुझे तो बचा तुमसे काम निकालना है (प्रगट)-चित्त को भी स्वर के साथ मिलाना पड़ता है और क्या न ! सङ्गीत क्या साधारण... ..

महापिङ्गल—तुमने भी कैसी अच्छी सङ्गीत-विज्ञान की बात कही है ; वाद्य तो पीछे मिलता है पहले मन तो मिले।

विशाख—मन मिलने से कण्ठ मिलता है।

महापिङ्गल—यथार्थ है, क्या कहा—वाह वाह ! अच्छा गाता हूँ-(खाँसता है)

(महापिङ्गल भीषण स्वर में गाता है—)

मचा है जग भर में अन्धेर
उल्टा-सीधा जो कुछ समझा वही हो गया ढेर।
बुद्धि अन्ध के जैसे कोई हाथों लगी बटेर
किसी तरह से करो उड़न्छू औरों का धन ढेर।

बक-बक करके चुप कर दो बस चतुर हुए क्या देर?
चलती है यह चला करेगी चालें इसकी घेर।
चतुर सयाने किया करेंगे इसमें हेराफेर
मचा है जग भर में अन्धेर।

विशाख—धन्य धन्य, क्या गाया!

महापिङ्गल—तुम्हारा सिर! और क्या? ऐसा मूर्ख तो हमने देखा नहीं। कहाँ से यहाँ चला आया; निकल जा यहाँ से! कोई है?

विशाख—चमा हो, मुझसे अपराध क्या हुआ? मैं तो एक क्षुद्र जीव आपका शरणागत हूँ।

महापिङ्गल—हाँ बचा! अब तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। बड़े लोगों का चित्त अव्यवस्थित रहता है, वह अपना भूला हुआ क्रोध कभी अचानक ध्यान कर लेने पर इसी तरह बिगड़ बैठते हैं। उस समय उनकी बातों को इसी तरह ठण्डा करना चाहिये। अब तुमको राजा का दर्शन मिलेगा।

विशाख—(अलग)—हे भगवन्, तो क्या ये आदमी भी काटनेवाले कुत्तों से कम हैं! उनको क्रोध का रोग होता है, या अभिमान और गर्व दिखलाने का यह बहाना है? (प्रकट) श्रीमन्, कब?

महापिङ्गल—अच्छा फिर कभी आना। क्या राजा लोग

इस तरह शीघ्र किसी से भेंट करते हैं ! हाँ तुम्हारा अभीष्ट क्या है ? सो तो कहो ।

विशाख—कुछ नहीं, एक सुन्दरी की कुछ करुण कथा निवेदन करनी है । उसके दुःख-मोचन की प्रार्थना है ।

महापिङ्गल—क्या विरह-निवेदन ! तब तो महाराज से तुम्हें शीघ्र मिला दूँगा । किन्तु कुछ गड़बड़ बातें न कहना ।

विशाख—श्रीमान् राज-सहचर हैं । बौद्ध साधु की कुकर्म्म-कथा राजा के कानों तक पहुँचाना मेरा अभीष्ट है. उसने एक सुन्दरी को अपने मठ में बन्द कर रक्खा है ।

महापिङ्गल—सुन्दरी और साधु का सरस प्रयोग है—साधु वर्ण विन्यास है, सु···सा ··साहित्य का सुन्दर समावेश है । फिर तुम्हारे-से अरसिक उसमें गड़बड़ क्यों मचाना चाहते हैं ?

विशाख—श्रीमन् ! आपके कानों ने आपकी बुद्धि को मूर्ख बनाया है, साधु ने सुन्दरी को पकड़ मँगाया है, सुन्दरी ने साधुता नहीं ग्रहण की है ।

महापिङ्गल—सत्य है क्या ? बौद्ध भिक्षु होकर अपने मठ में उसने स्त्री रख ली है !

विशाख—वे तो उसे मठ नहीं, विहार कहते हैं !

महापिङ्गल—अच्छा चलो, अभी तुम्हें राजा से मिलाता हूँ ।

३

(स्थान—राजसभा ; महाराज नरदेव सिंहासनासीन हैं ।
नर्त्तकी नाचती और गाती है—)

कुञ्ज में बंशी बजती है

स्वर में खिंचा जा रहा मन, क्यों बुद्धि बरजती है
सन्ध्या रागमयी, तानों का भूषण सजती है
दौड़ चलूँ, देखूँ लज्जा अब मुझको तजती है
कुञ्ज में बंशी बजती है

नरदेव—वाह-वाह ! कुछ और गाओ—

(नर्त्तकी नमस्कार करके फिर गाती है—)

आज मधु पी ले, यौवन वसन्त खिला !
शीतल निभृत प्रभात में, बैठ हृदय के कुञ्ज
कोकिल कलरव कर रहा, बरसाता सुख पुञ्ज
देख लो बौरा रसाल हिला
आज मधु पी ले, यौवन बसन्त खिला !

चन्दन वन की छाँह में, चलकर मन्द समीर
अब मेरा निश्वास हो, करता किसे अधीर
मधुप क्यों मञ्जु मुकुल से मिला
आज मधु पी ले, यौवन वसन्त खिला !

नरदेव—प्रतिहारी ! इन्हें पुरस्कार दिलाओ ।

प्रतिहारी—जो आज्ञा। (नर्त्तकी जाती है)

नरदेव—आज महापिङ्गल दिखाई नहीं देता है, कहाँ है?

सभासद्—महाराज, आज उसके यहाँ प्रीति-भोज है। हम सभों का न्योता है। उसी में व्यस्त होगा।

महापिङ्गल—(दौड़ा हुआ आता है)-दोहाई महाराज, झूठ बिल्कुल झूठ! यह सब हमारा घर खा डाला चाहते हैं। लम्बी-चौड़ी प्रशंसा करके तुम्हारे नाम जो है सो सब खा गये। और न्योता सिर पर। हम बुलाएँ या नहीं, ये सब आप ही नाई बनकर अपने को न्योत लेते हैं।

सभासद्—पृथ्वीनाथ! यह बड़ा कञ्जूस है। नित्य कहता है कि आज खिलाएँगे, कल खिलाएँगे, कभी इसने हाथ भी न धुलाया।

महापिङ्गल—कोई है जी लाओ पानी, इनका हाथ धुला दो, तनिक मुँह तो देखो, पहले उसे धो लो, कहीं से माल उठा लाए हैं जो है सो तुम्हारे नाम खिलाओ! खिलाओ! और जब खा-पी चुके तब बड़े भारी शास्त्री की तरह आलोचना करने लगे। उसमें नमक विशेष था, खीर में मीठा कुछ फीका था। लड्डू गीला था, ऐं?

सभासद्—वह तो जब हम लोग सन्ध्या को पहुँचेंगे तब मालूम होगा?

महापिङ्गल—अरे बाबा, तुम्हें प्रीति-भोज ही लेना है तो उन

मालदार महन्तों के यहाँ क्यों नहीं जाते, जहाँ नित्य मालपुआ और लड्डू बना करते हैं। यदि कुत्ते की तरह बाहर भी बैठे रहोगे, तो जूठी पत्तलों से पेट भर जायगा।

सभासद्—तुम बड़े असभ्य हो!

महापिङ्गल—और यह बड़े सभ्य हैं, जो बिना बुलाये भोजन करने को प्रस्तुत हैं। जाओ जाओ, बड़े-बड़े विहारों में यदि तुम मिट्टी फेंकते तो भी तुम लड्डू के लिये लालायित न रहते।

नरदेव—आज तो बौद्ध महन्त और विहारों के पीछे बहुत पड़ रहे हो! कुशल तो है?

महापिङ्गल—महाराज! अब तो मैं तपस्या करूँगा कि यदि पुनर्जन्म हो, तो मैं किसी विहार का महन्त होऊँ। राज-कर से मुक्त, अच्छी खासी जमींदारी, बड़े-बड़े लोग सिर झुकावें और चेली लोग पैर दबावें, तुम्हारा नाम जो है सो।

नरदेव—चुप मूर्ख! भिक्षुओं के साथ हँसी ठीक नहीं, वे पूजनीय हैं।

महापिङ्गल—क्षमा हो पृथ्वीनाथ, उसी झगड़े में देर हुई है। अभी उनकी साधुता का सुन्दर नमूना ड्योढ़ी पर है। यदि आज्ञा हो तो बुलाऊँ।

नरदेव—क्यों, कोई आया है।

महापिङ्गल—हाँ एक दुखी विनती सुनाने आया है।

नरदेव—उसे बुलाओ।

महापिङ्गल—जो आज्ञा—(जाता है, विशाख को लेकर आता है)

विशाख—जय हो देव ! राज्य-श्री बढ़े ! प्रजा का कल्याण हो।

नरदेव—प्रणाम ब्राह्मण देवता—कहिये क्या काम है।

विशाख—राजन् ! पुण्य को पाप न होने देना, आप ही से प्रबल प्रतापी नरेशों का कर्त्तव्य है।

नरदेव—इसका अर्थ, सविस्तर कहिए।

विशाख—कानीर बिहार का बौद्ध महन्त जिसे राज्य की ओर से बहुत सी सम्पत्ति मिली है, प्रमादी हो गया है। दीन-दुखियों की कुछ नहीं सुनता—मोटे निठल्लों को एकत्र कर के बिहार में बिहार कर रहा है। एक दरिद्र नाग की कन्या को अकारण पकड़ कर अपने मठ में बन्द कर रखा है। उसका वृद्ध पिता दुखी हो कर द्वार-द्वार विलाप कर रहा है।

नरदेव—क्या मेरे राज्य में ऐसा अन्याय और सो भी राजधानी के समीप ही ! भला वह किसकी कन्या है ?

विशाख—पृथ्वीनाथ, सुश्रवा नाग की। उसी की भूमि अपहृत कर के—आपके स्वर्गीय पिता ने बिहार में दान कर दिया था।

मन्त्री—चुप मूर्ख, राजसभा में तुझे बोलना नहीं आता, अपहृत कैसी ? भूमि का अधिपति तो राजा है, वह जब जिसे चाहे दे सकता है।

विशाख—क्षमा मंत्रिवर ! क्षमा। बोलना तो आता है; परन्तु क्या राजसभा में सत्य उपेक्षित रहता है ? यदि ऐसा हो, तो हम

गम्य हैं। क्योंकि, हम अभी गुरुकुल से निकले हैं, राज्यव्यवहार से अभिज्ञ हैं।

नरदेव—बस ब्राह्मणदेव पर्याप्त हुआ (मन्त्री से) क्यों मन्त्रिवर ! क्या यही प्रबन्ध राज्य का है ? खेद की बात है। अभी इस ब्राह्मण की बातों की खोज की जाय, और गुप्त रीति से। देखो आलस न हो ! हम स्वयं इसका न्याय करेंगे।"

महापिङ्गल—"स्वामी, ये भी तो "ग्राम कण्टक" हैं। इनकी अवश्य खोज लेनी चाहिये। शास्त्र में लिखा भी है 'कण्टके नैव कण्टकं' जो है सो।

नरदेव—"चुप रहो, तुम्हारी बातें अच्छी नहीं लगतीं। मन्त्री शीघ्र प्रबन्ध करो, बस जाओ।"

(मन्त्री और विशाख तथा महापिङ्गल जाते हैं —)

(पट-परिवर्तन)

४

(स्थान—विहार के समीप—पथ—)

(एक रँगीला साधु गाता हुआ आता है—)

साधु— (गान)

तू खोजता किसे, अरे आनन्दरूप है ॥
उस प्रेम के प्रभाव ने पागल बना दिया ।
सब को ममत्व मोह का आसव पिला दिया ॥
अपने पै आप मर रहा यह भ्रम अनूप है ॥ तू० ॥
वह सत्य यही स्वर्ग यही पुण्यवोष है ।
सत्कर्म कर्मयोग यही विश्व कोश है ॥
किसने कहा कि झूठ है संसार कूप है ॥ तू० ॥
सेवा, परोपकार, प्रेम सत्य कल्पना ।
इनके नियम अमोघ और झूठ जल्पना ॥
हो शान्ति की सत्ता वही शक्ति स्वरूप है ॥ तू० ॥
आसक्ति अन्य पर न किसी अन्य के लिये ।
उसका ममत्व घूम रहा चेतना लिये ॥
सर्व्वस्व उसी का वही सब का स्वरूप है ॥ तू० ॥
वह है कि नहीं है ? विचित्र प्रश्न मत करो ।
इस विश्व दयासिन्धु बीच सन्तरण करो ॥
वह और कुछ नहीं विशाल विश्व रूप है ।
तू खोजता किसे अरे आनन्दरूप है ॥

भिक्षु—(विहार से निकल कर)-वन्दे !

साधु,—स्वस्ति। आनन्द। कहोजी, इस विहार का क्या नाम है और इसके स्थविर कौन हैं ?

भिक्षु—महाशय, श्रीसत्यशील इस विहार के स्थविर हैं और कानीर विहार इसका नाम है।

साधु—वाह, क्या यहाँ आतिथ्य के लिये भी कोई प्रबंध है ? क्या कोई श्रमण अतिथि रूप से यहाँ थोड़ा विश्राम कर सकता है ?

भिक्षु—आर्य्य, आपका शुभ नाम सुनूँ, फिर जाकर स्थविर से निवेदन करूँ।

साधु—कह देना कि प्रेमानन्द आया है।

(भिक्षु भीतर जाकर लौट आता है)

भिक्षु—चलिये, आतिथ्य के लिये हम लोग प्रस्तुत हैं।"

(बड़बड़ाता हुआ विशाख आता है)

विशाख—(आपही)-सिर घुटाते ही ओले पड़े। कोई चिन्ता नहीं। इसी में तो आना था। झंझट जितनी जल्द आवे और चली जावे तो अच्छा। अच्छा हम जो इस पचड़े में पड़े तो हमको क्या। परोपकार ! ना बाबा! झूठ बोलना पाप है। चन्द्रलेखा को यदि न देखता, तो सम्भव है कि यह धर्म-भाव न जगता। मैंने सुना है कि मेरे गुरुदेव श्रीप्रेमानन्दजी आये हैं और इसी

अधम विहार में ठहरे हैं। वह भिक्षु तो मुझे देखते ही काटने को दौड़ेगा ; फिर भी कुछ चिन्ता नहीं, गुरुदेव का तो दर्शन अवश्य करूँगा। (उच्च स्वर से) अजी यहाँ कौन है ?

भिक्षु—(बाहर निकल कर) क्या है जी, क्या कोलाहल मचाया है ?

विशाख—गुरुजी यहाँ पधारे हैं, मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ।

भिक्षु—कौन ? तुम्हारे गुरुजी कौन हैं ; एक प्रेमानन्द नाम का सन्यासी आया है। क्या वही तो तुम्हारा गुरु नहीं है ?

विशाख—क्या तुम उसी स्थविर के चेले हो, जिसने कि एक अनूढ़ा कन्या को पकड़ कर बन्द कर रक्खा है ?

भिक्षु—क्या तुम झगड़ा करने आये हो ?

विशाख—क्या तुमको शील और विनय की शिक्षा नहीं मिली है ?

भिक्षु—अशिष्ट पुरुषों के लिये अन्य प्रकार का शिष्टाचार है। और अब तुम यहाँ से सीधे चले जाओ, इसी में तुम्हारी भलाई है ?

विशाख—बस। मिट्टी के बर्त्तन थोड़ी ही आँच में तड़क जाते हैं। नये पशु एक ही प्रहार में भड़क जाते हैं। यह राजपथ है, यहाँ से हटाने का तुम्हें अधिकार नहीं है। बस अब तुम्हीं अपने विहार-बिल में घुस जाओ !

भिक्षु—(कमर बाँधता हुआ) तो क्या तुम नहीं जाओगे ?

विशाख—समझ लो, कहीं गाँठ पड़ जायगी, तो कमर न खुलेगी, और तुम्हें ही व्यथा होगी (हँसता है)

(सत्यशील और प्रेमानन्द निकल पड़ते हैं)

सत्यशील—क्या है ? क्यों झगड़ते हो ? (विशाख को देखता है)

प्रेमानन्द—विशाख ! यह क्या है ? (विशाख अभिवादन करता है)

विशाख—गुरुदेव आपका यहाँ आना सुनकर मैं भी चला आया।

प्रेमानन्द—क्या तुम अभी अपने घर नहीं गये।

विशाख—गुरुकुल से निकलते ही कर्त्तव्य सामने मिला। आपकी आज्ञा थी कि सेवा, परोपकार और दुखी की सहायता, मनुष्य के प्रधान कर्त्तव्य हैं।

प्रेमानन्द—भला ! तुम्हारे कार्य्य का विवरण तो सुनूँ।

विशाख—मुझे कहते संकोच होता है।

प्रेमानन्द—नहीं। संकोच की क्या आवश्यकता है, स्पष्ट कह सकते हो।

विशाख—आपने जिनका आतिथ्य ग्रहण किया है, इन्हीं

महात्मा ने एक कुटुम्ब को बड़ा दुखी बनाया है, और उसकी कन्या को अपने विहार में बन्द कर रखा है।

प्रेमानन्द—सत्यशील, क्या यह सत्य है ?

सत्यशील—तुम कौन होते हो। अजी तुमने किस संघ में उपसम्पदा ग्रहण की है ? केवल सिर घुटा लेने से ही श्रमण नहीं होता, हाँ। पहले अपनी तो कहो, तुम्हें प्रश्न करने का क्या अधिकार है ? क्या आतिथ्य का यही प्रतिकार है ? बस चले जाओ सीधे, हाँ !

प्रेमानन्द—मैं शाश्वत संघ का अनुयायी हूँ। प्रेम की सत्ता को संसार में जगाना मेरा कर्त्तव्य है। तो भी संसारी नियम, जिसमें समाज का सामंजस्य बना रहे, पालनीय है, और तुम उससे उपेक्षा दिखलाते हो। क्या तुम उस कन्या को न छोड़ दोगे ? क्या धर्म की आड़ में प्रभूत पाप बटोरोगे ?

सत्यशील—तुम्हें यहाँ से जाना है या नहीं ?

विशाख—गुरुदेव सहनशीलता की भी सीमा होती। अब आप इस पाखण्डी से बात न कीजिये। घड़ा भर गया है ! स्वतः फूटेगा ?

प्रेमानन्द—"मना आनन्द मत, कोई दुखी है।
सुखी संसार है तो तू सुखी है॥
न कर तू गर्व औरों को दबा कर।
कठिनता से दबाकर तू दुखी है॥

बस चले जाओ। अपने विहार में विहार करो। किन्तु यह ध्यान रखना, तुम्हें इसका प्रतिफल मिलेगा।

सत्यशील—भला भला! बहुत सा देखा है।

(सत्यशील और भिक्षु जाते हैं—)

प्रेमानन्द—बेटा विशाख! तुम अब कहाँ जाओगे?

विशाख—गुरुदेव! कृपा कर बतलाइये कि आप यहाँ कैसे? मुझे जहाँ आज्ञा मिलेगी वहीं जाऊँगा!

प्रेमानन्द—(कुछ विचार कर)-ठीक है, तेरा मार्ग भिन्न है, तुझे आवश्यकता है। जब तक सुख भोग कर चित्त उनसे नहीं उपराम होता, मनुष्य पूर्ण वैराग्य नहीं पाता है। तुझे कर्मयोग के व्यावहारिक रूप ही का अनुकरण करना चाहिये। विश्व में मानव का यही धर्म है।

विशाख—भगवान्, सुख भोग कर भी बहुत लोग उनसे नहीं घबराते हैं और शान्ति को नहीं पाते हैं?

प्रेमानन्द—और यह भी देखा गया है कि बिना कुछ भी सुख लिये, किशोर अवस्था में ही कितनों को पूर्ण शान्तिमय वैराग्य हो जाता है। इसका कारण केवल संस्कार है। इसलिये वैराग्य अनुकरण करने की वस्तु नहीं; जब वह अन्तरात्मा में विकसित हो, जब उलझन की गाँठ सुलझ जावे, उसी समय हृदय स्वतः आनन्दमय हो जाता है—

समीर स्पर्श कली को नहीं खिलाता है।
विकस गई, खुली, मकरन्द जब कि आता है॥

विशाख—देव ! फिर परिश्रम की कोई आवश्यकता नहीं। वह तो जब आने को होगा ; आवेगा।

प्रेमानन्द—विशाख उधर देखो ; कमल पर भँवरों को—

मधुमत्त मिलिन्द माधुरी,
मधुराका जग कर बिता चुके।
अरविन्द प्रभात में भला,
फिर देता मकरन्द क्यों उन्हें ?

सन्ध्या के मधु ने रात भर भ्रमरों को आनन्द जागरण में रखा, सबेरे ही फिर मिला, दिनभर फिर नस्त। हृदय कमल जब विकसित हो जाता है, तब चेतना बराबर आनन्द मकरन्द पान किया करती है जिसमें नशा टूटने न पावे। सत्कर्म हृदय को विमल बनाता है और हृदय में उच्च वृत्तियाँ स्थान पाने लगती हैं ; इसलिये सत्कर्म, कर्मयोग को आदर्श बनाना आत्मा की उन्नति का मार्ग स्वच्छ और प्रशस्त करना है।

विशाख—फिर क्या आज्ञा है ?

प्रेमानन्द—यही कि जब तक शुद्ध बुद्धि का उदय न हो, तब तक स्वार्थ-प्रेरित होकर भी सत्कर्म करणीय है। तुम्हारा उद्देश्य उत्तम होना चाहिये। जो कर्त्तव्य है उसे निर्भय होकर करो।

विशाख—(चरण पकड़ कर)—वही होगा गुरुदेव ! कृपा

बनी रहे। हाँ, आपने क्या गुरुकुल छोड़ दिया? अब वहाँ पर कौन है?

प्रेमानन्द—"स्थान कभी खाली नहीं रहवे, अब वह सब अच्छा नहीं लगता। परिव्राजक होकर प्रकृति का दर्शन करूँ, यही अभिलाषा है—

घबराना मत इस विचित्र संसार से।
औरों को आतङ्क न हो अविचार से॥
कभी न हो आनन्द कोश में, पूर्ण हो।
कहीं न चालों में पड़ कोई चूर्ण हो॥
सीधी राह पकड़ कर सीधे चल चलो।
छले न जाओ औरों को भी मत छलो॥
निर्बल भी हों; सत्य पक्ष मत छोड़ना,
शुचिता से इस कुहक जाल को तोड़ना॥

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्त्तन)

५

(स्थान—संघाराम का एक अंश)

(बन्दिनी चन्द्रलेखा)

चन्द्रलेखा— (गाती है—)

"देखी नयनों ने एक झलक, वह छवि की छटा निराली थी।
मधु पीकर मधुप रहे सोए कमलों में कुछ कुछ लाली थी॥
सुरभित हाला पी चुके पलक; वह मादकता मतवाली थी।
भोले मुख पर वे खुले अलक, सुख की कपोल पर लाली थी॥
देखी नयनों० ॥

हा! प्रेम का विकास और विपत्ति का परिहास साथ ही साथ दोनों उबल पड़े; हृदय में विपत्ति की दारुण ज्वाला जल रही थी, उसी में प्रणय सुधाकर ने शीतलता की वर्षा की, मरुभूमि लहलहा उठी। इस कुत्सित कोठरी में आँख बन्द कर उसी स्वर्ग का आनन्द लेती हूँ। निष्ठुर! पाखण्ड ने मुझे कितना प्रलोभन दिया। यदि एक बार देख लेने पाती! पिताजी तो मुक्त हैं, इरावती बहिन उनकी सेवा कर लेगी। मैं तो इस दुःख वा सुखी जीवन से छुट्टी पाने के लिये प्रस्तुत हूँ।

(घबराए हुए एक भिक्षु का प्रवेश, बाहर कोलाहल)

भिक्षु—भाग चाण्डाली! तेरे कारण सब सत्यानाश हुआ। निकल। क्या अब उठा नहीं जाता?

चन्द्रलेखा—क्यों, बात क्या है ? क्या अब मैं चली जाऊँ।

भिक्षु—हाँ हाँ चली जाओ। अभी जाओ।

(दूसरी ओर से नरदेव और पकड़ा हुआ सत्यशील आता है)

नरदेव—(चन्द्रलेखा को देखकर आपही आप) आह ऐसा रंग तो मेरे रङ्गमहल में भी नहीं (प्रकट) क्यों सत्यशील, तुम्हारे सत्य और शील का यही न प्रमाण है ?

सत्यशील—नरेश यह प्रव्रज्या ग्रहण करने आई है।

चन्द्रलेखा—कभी नहीं! यह झूठा है। मेरे बूढ़े पिता को मारता था, मैं छुड़ाने आई। बस मुझे ही पकड़ कर इसने यहाँ बन्द कर रखा है। यह दुराचारी है नरनाथ !

नरदेव—(स्वगत)-रूप की सत्ता ही ऐसी है। कौन इससे बच सकता है ? (प्रकट)—किन्तु सत्यशील ! तुम तो अधम कीट हो ; तुम्हारे लिये यही दण्ड है कि तुम लोगों का अस्तित्व पृथिवी पर से उठा दिया जाय, नहीं तो तुम लोग बड़ा अन्याय फैलाओगे। सेनापति ! सब विहारों को राज्य भर में जलवा दो।

सेनापति—जो आज्ञा।

नरदेव—इस मिथ्याशील को इसी कोठरी में बन्द करो, और इस विहार में भी आग लगवा दो। अभी।

सेनापति—जैसी आज्ञा।

(राजा और चन्द्रलेखा तथा अन्य लोग खड़े होकर देखते हैं—)

(झपटते हुए प्रेमानन्द और विशाख का प्रवेश—)

प्रेमानन्द—राजन्! क्रोध से न्याय नहीं होता। यह क्या अनर्थ कर रहे हो! धर्म का तुम नाम उठा देना चाहते हो, सो भी उसी की दुहाई देकर! अन्य विहार वा भिक्षुओं ने क्या किया था?

नरदेव—(हँसकर) आप भी तो ऐसे ही परिव्राजक हैं न। ऐसे को ऐसा ही कड़ा दण्ड देना चाहिये। चुप रहिये।

प्रेमानन्द—मैं वैसा भिक्षु नहीं। राजन्, सत्ता का अपव्यय न करो। सत्ता शक्तिमानों को निर्बलों की रक्षा के लिये मिली है, औरों को डराने के लिये नहीं। प्रजा के पाप का फल या परिणाम ही न्याय है। तब राजा को और पाप करके पाप को नहीं दबाना चाहिये। न्याय के दोनों ही आदेश हैं, दण्ड और दया। इसलिये शासक के आचरण ऐसे होने चाहियें जिससे प्रजा को उत्तम आदर्श मिले, प्रजा में दया आदि सद्गुण का प्रचार हो।

नरदेव—(सिर झुकाकर)-जैसी आज्ञा।

प्रेमानन्द—यह अपनी आज्ञा बन्द करो कि सब विहार जला दिये जायँ। सुन्दर आराधना की, करुणा की भूमि को नृशंसता बर्बरता का राज्य न बनाओ। तुम नहीं जानते कि 'यथा राजा तथा प्रजा'।

नरदेव—वैसा ही होगा।

विशाख—हटिये यहाँ से, वह देखिये जली हुई दीवार गिरा चाहती है। (सब लोग हटते हैं। दीवार गिरती है)

(यवनिका पतन)

द्वितीय अङ्क

१

(स्थान—पहाड़ी झरने के समीप विशाख और चन्द्रलेखा)

विशाख—चन्द्रलेखा ! यह कैसा रमणीय प्रदेश है ? जी नहीं ऊबता । बनस्थली भी ऐसी मधुरिमामयी होती है, इसका मुझे कभी ध्यान भी नहीं था । हम लोग क्या सदैव इसी तरह प्रकृति की सुन्दर भ्रूभङ्गी देखते जीवन व्यतीत कर सकेंगे ?

चन्द्रलेखा—विशाख ! कौन कह सकता है ? क्या क्षितिज की सीमा से उठते हुए नीलनीरद खण्ड को देख कर कोई बतला देगा कि यह मधुर फुहारा बरसावेगा कि करकापात करेगा । भविष्य को भगवान् ने बड़ी सावधानी से छिपाया है और उसे आशामय बनाया है ।

विशाख—प्रिये ! आज मैं भी क्या उस आशामय भविष्य का आनन्द मनाऊँ, हृदय में रसीली वंशी बजाऊँ ? क्या मैं......

चन्द्रलेखा—(बात काट कर)—बस, उसे हृदय से उठकर मस्तिष्क तक ही जाने दो, रसना पर लाने में रस नहीं है ।

विशाख—(व्याकुल होकर)—मैं कहूँगा—

हृदय की सब व्यथाएँ मैं कहूँगा ।
तुम्हारी झिड़कियां सौ सौ सहूँगा ॥

मुझे कहने न दो फिर चुप रहूँगा।
तुम्हारी प्रेम धारा में बहूँगा॥
हृदय अपना तुम्हीं को दे दिया है।
नहीं; तुमने स्वयंही ले लिया है॥

चन्द्रलेखा—अब तुम्हीं बताओ कि मैं क्या कहूँ? मुझे तो तुम्हारी तरह कविताएँ कण्ठस्थ नहीं। हृदय के इस बनिज-व्यापार को मैं अच्छी तरह नहीं जानती। फिर भी......

विशाख—फिर भी; फिर भी क्या; वही, उतना ही कह दो।

चन्द्रलेखा—यही कि जब तुमसे बात-चीत होने लगती है तब मेरा मन न-जाने कैसा कैसा करने लगता है। तुम्हारी सब बातें स्वीकार कर लेने की इच्छा होती है। तो भी......

विशाख—तो भी! फिर वही तो भी। अरे तो भी क्या?

चन्द्रलेखा—यही कि मुझे तुम अपने बूढ़े बाप की गोद से छीन लिया चाहते हो। यह बड़ी भयानक बात है।

विशाख—तो क्या मैं इतना निष्ठुर हूँ, मुझे तुम्हें कहीं लेकर चले जाना नहीं है। मैं तो केवल आज्ञा चाहता हूँ कि...

चन्द्रलेखा—(बात काट कर)—कि नहीं! ऐं?

विशाख—तो अब मैं कुछ न कहूँ। (जाना चाहता है)

चन्द्रलेखा—सुनो तो, कहाँ जा रहे हो?

विशाख—जहाँ भाग्य ले जावे।

चन्द्रलेखा—तब तो तुम बड़े सीधे मनुष्य हो। अच्छा आओ चलो, उस कुञ्ज से कुछ दाड़िम तोड़ लें।

विशाख—(गम्भीर होकर)—नहीं चन्द्रलेखा। परिहास का समय नहीं है। तुम देख रही हो कि समीप ही बड़ी गहरी खाई है और तुम अपनी सहारे की डोरी खींच लिया चाहती हो।

(सामने दिखाता है)

चन्द्रलेखा—(घबरा कर उसे पकड़ लेती है)-हाँ हाँ, तो क्या तुम उसमें कूद पड़ोगे। ऐसा न करना, मैं तुम्हारी हूँ।

(नेपथ्य से "अन्त को तू हार गई")

चन्द्रलेखा—इरावती बहिन है क्या ?

विशाख—मैंने तो एक दृष्टान्त दिया था। सचमुच तुम तो घबड़ा गई हो। अच्छा इस घबराहट ने ही मेरा काम कर दिया.

(इरावती का प्रवेश)

इरावती—और इस बेचारी को बेकाम कर दिया।

(चन्द्रलेखा लज्जित होती है)

इरावती—चन्द्रलेखा ! बूआ इधर ही आ रही हैं। वह कुछ कहा चाहती हैं। (रमणी का प्रवेश)

रमणी—वत्स विशाख ! तुम दोनों का अनुराग देख कर मैं बहुत प्रसन्न हुई। भाई सुश्रवा भी आज ही कल में आनेवाले हैं। राजा नरदेव ने उनकी सारी सम्पत्ति जो विहार से मिली है

लौटा दी है। (चन्द्रलेखा से)—बेटी चन्द्रलेखा, मैंने जो तुझसे कहा है उन बातों को कभी न भूलना।

चन्द्रलेखा—बुआ ! आपकी शिक्षा मैं सादर ग्रहण करती हूँ।

(रमणी जाती है। कुछ सखियाँ आती हैं)

१ ली—अरी चन्द्रलेखा ! तूने अपना ब्याह भी ठीक कर लिया, हमलोगों को पूछा तक नहीं।

२ री—अरी वाह ! इसमें पूछने की कौन सी बात है। ऐसा तो तू भी करेगी।

३ री—अरी ! चल क्या तेरी ही तरह सब हैं ?

४ थी—तुम सब बड़ी पगली हो ! पहले अभी वरवधू का स्वागत तो कर लो। आ इरावती, तू भी हम लोगों के सङ्ग आ।

(विशाख और चन्द्रलेखा को घेर कर सब गाती और नाचती हैं)

हिये में चुभ गई,
हाँ, ऐसी मधुर मुसक्यान।
लूट लिया मन ऐसा चलाया नैन का तीर-कमान॥
भूल गयी चौकड़ी, प्राण में हुआ प्रेम का गान।
मिले हृदय दो, अमल अछूते, दो शरीर इक प्रान॥
हिये में चुभ गई—

(पट-परिवर्तन)

२

(महापिङ्गल का घर)

महापिङ्गल—कौन कहता है कि मैं नीरस हूँ। प्रेम-रस यदि मेरे रोम-कूपों से निकाला जाय तो चार-चार रहट चलने लगे। अब मैं प्रेम करूँगा ! प्रेम। अच्छा तो किससे करूँ। सोच-समझ कर करूँ, जिसमें नामहँसाई न हो। अच्छा वह जो उस दिन सन्ध्या को वितस्ता के तट पर बाल खोले सुन्दरी बैठी थी। है तो अच्छी, पर बाल उसके झाड़ू की तरह लम्बे थे। ऊहूँ ; वह नहीं। अच्छा वह, हाँ हाँ ! परन्तु नहीं उसकी नाक इतनी लम्बी थी कि सुवा केला की फली समझ कर ठोर चलाने लगे। नहीं नहीं वह तो मेरे प्रेम के योग्य नहीं। अच्छा ! वह तो ठीक रही, न न न बापरे ! उसकी आँखें देखकर डर लगता है जैसे किसी ने मार दिया हो और वह निकली पड़ती हो। भाई मुझे तो कोई समझ में नहीं आती। अरे यहाँ कोई है (इधर उधर देखकर)—कोई नहीं है कि मुझे इस विपत्ति में सलाह दे। इसी लिये तो बड़े आदमी पार्श्वचर रखते हैं (सोचता है)—हा हा हा हा, बुद्धू ही रहे। कहाँ के कहाँ दौड़ गये पर अपना सिर नहीं टटोला। अरे वह मेरी घर वाली। नहीं नहीं उसकी दोनों नथुने दो भयानक सुरङ्ग के मुँह से खुले रहते हैं, कभी ऊँघते हुए उसी में न घुस जाऊँ। ना बाबा। हाँ, अब याद आया, धत् तेरे की, उस दिन सुश्रवा नाग

के यहाँ जो मैं गया था तो एक चन्द्रलेखा थी, दूसरी कौन थी ? वह इरावती, अहा हा, मैं तो प्रेमी हो गया। राजा, चन्द्रलेखा पर और इरावती पर मैं आसक्त हुआ। हो गया। अब मैं प्रेम करने लगा। तनिक लम्बी-लम्बी साँस तो लूँ। आँखों से आँसू बहाऊँ। प्रिये, प्रियतमे इस दास······(लेट जाता है)

(तरला आकर धौल जमाती है)

तरला—बुढ़ापे में प्रेम की अफीम खाने चला है !

महापिङ्गल—(घबड़ा कर हाथ जोड़ता हुआ)—नहीं नहीं, मैं तो अफ़ीम नहीं भाँग पीता हूँ। भाँग तो अभी है न।

तरला—पिलाती हूँ। तुझे संखिया घोल कर पिलाती हूँ। कौन निगोड़ी है, जिसपर तुझे बुढ़ापे में मरने का सुख मिलने वाला है।

महापिङ्गल—(उसी तरह)—कोई नहीं कोई नहीं, तुम्हारी चञ्चलता की शपथ।

तरला—कोई नहीं। अभी क्या कहते थे बैल के भाई ! हम लोगों ने तो कभी दूसरे की ओर हँस कर देखा कि प्रलय मचा, व्यभिचारिणी हुई, और तुम्हारे ऐसे साठ वर्ष के खपट्टों को प्रेम-वाले दूध के दाँत जमें।

महापिङ्गल—(बिगड़ कर)—क्या कहा, मैं साठ वर्ष का हूँ। यह मुझे नहीं सहन हो सकता, अभी मेरी मूँछें काली हैं। आँखों में लाली है। (उँगली पर गिनता हुआ) चालीस पाँच पैंतालीस

तीन अड़तालीस वर्ष ग्यारह महीना एक पक्ष एक सप्ताह छ दिन पाँच पहर एक घड़ी सवा दण्ड साढ़े तीन पल का हूँ। तात्पर्य्य, पचास वर्ष से भी कम का हूँ।

तरला—(सफेद बालों का गुच्छा पकड़ कर खींचती हुई)—और यह क्या है।

महापिङ्गल—दुहाई है। मेरे बाल नहीं। ये काले हैं, हाँ हाँ चूना लग गया है। शास्त्र की आज्ञा से अभी मैं ब्याह, प्रेमा या और इसी तरह का सब गड़बड़ कर सकता हूँ। दुहाई है। मेरे बाल काले हैं।

तरला—चूना लगा है तुम्हारे मुँह में !

(महापिङ्गल मुँह पोछने लगता है। तरला हँसती है। और बाल खींचती है)

महापिङ्गल—देखो यह हँसी अच्छी नहीं लगती। छोड़ दो।

तरला—प्रेम करोगे ! सहज में ?

महापिङ्गल—अरे, तुम बड़ी मूर्ख हो। वह सब एक स्वाँग था। भला राजा-का-सा रूप न भरें तो मिले क्या। अभी तक तुम्हारा चन्द्रहार नहीं बन सका, जब राजा को अपने ढङ्ग का बनाऊँ तब तो काम हो।

तरला—हाँ, सच तो। मेरा चन्द्रहार लाओ।

महापिङ्गल—देखो कैसी पिघल गई। गर्म कढ़ाई में घी हो गई। गहने का जब नाम सुना, बस पानी पानी।

तरला—बातें न बनाओ। लाओ मेरा हार।

महापिङ्गल—अभी तार लगे तब न हार मिले। तुम तो बीच में ही बिल्ली की तरह राह काटने लगी।

तरला—तब अब की ला दोगे।

महापिङ्गल—अच्छा। पर कान में एक बात तो सुन जाओ।

तरला—जाओ, जाओ; मैं नहीं सुनती।

महापिङ्गल—तब फिर।

तरला—अच्छा। अच्छा।

(दोनों हाथ मिलाकर गाते हैं)

लगा दो गहने का बाजार।
कुछ है चिन्ता नहीं और क्या, मिले नहीं आहार॥
नाक छेद लो, कान छेद लो, होवें छेद हजार।
सोना चाँदी उनमें डालो, तब हो पूरा प्यार॥
बना दो गहने का बाजार—

(दौवारिक का प्रवेश—)

शीघ्र चलिये, महाराज ने बुलाया है।

महापिङ्गल—अरे हम नहीं—(भागता है। उसके पीछे दौवारिक जाता है)

(पट-परिवर्तन)

३

(राजकीय उद्यान ; नरदेव अकेला)

नरदेव—छाने लगी जगत में सुखमा निराली।
गाने लगी मधुर मञ्जुल कोकिलाली॥
फैला पराग, मलयानिल की बधाई।
देते मिलिन्द कुसुमाकर की दुहाई॥

यह हृदय ही दूसरा हो गया है या समय ही। मन अकस्मात् एक मनोहर मूर्ति का एकान्त-भक्त होता जा रहा है। चित्त में अलस उदासी विचित्र मादकता फैला रही है। आपही आप चुटीला मन और भी घायल होने के लिये ललच रहा है।

कौन है? प्रतिहारी!

(प्रतिहारी का प्रवेश)—जय हो देव! क्या आज्ञा है।

नरदेव—महापिङ्गल को शीघ्र बुलाओ।

प्रतिहारी—जो आज्ञा पृथ्वीनाथ, मन्त्री महोदय बाहर खड़े हैं।

नरदेव—नहीं, समय नहीं है। कह दो फिर आवें। तुम जाओ।

(प्रतिहारी सिर झुका कर जाता है)

जब चित्त को चैन नहीं, एक घड़ी भी अवकाश नहीं, शान्ति नहीं,—तो ऐसा राज लेकर कोई क्या करे; केवल अपना सिर पीटना है। वैभव केवल आडम्बर के लिए है। सुख के

लिये नहीं। क्या वह दरिद्र किसान भी जो अपनी प्रिया के गले में बाँह डाल कर पहाड़ी निर्झर के तट पर बैठा होगा मुझसे सुखी नहीं है।

किसी भी देश के बुद्धिमान शान्ति के लिये सार्वजनिक नियम बनाते हैं, किन्तु वह क्या सबके व्यवहार में आता है? जिस प्रतारणा के लिये शासक दण्ड-विधाता है कभी उन्हीं अपराधों को स्वयं करके दण्डनायक भी छिपा लेता है। धींगा धींगी, और कुछ नहीं। राजा नियम बनाता है। प्रजा उसको व्यवहार में लाती है। उन्हीं नियमों में जनता बँधी रहती है। राजा भी अपने बनाये हुए नियमों में मकड़ी और जाला की तरह मुक्त नहीं, किन्तु, कभी-कभी उल्टा लटक जाता है। उस रमणी को बरजोरी अपने वश में करने के लिये जी मचल रहा है, किन्तु नीति! नियम!! आह! हमारा शासन हमें ही बोझ हो रहा है, मन की यह उच्छृङ्खलता क्यों है?

महापिङ्गल—(प्रवेश करके)—क्यों क्या वह बन्दर भाग गया। अरे कोई दूसरी सिकड़ी लाओ। नहीं तो अश्वशाला की रखवाली कौन करेगा?

नरदेव-(हँसता हुआ)—अरे मूर्ख! बन्दर नहीं भागा है।

महापिङ्गल—फिर यह विचारों की चौलत्ती क्यों चल रही है?

नरदेव—नष्ट! भला क्या तूने मेरे हृदय को घुड़साल समझ रक्खा है।

महापिङ्गल—तो फिर और क्या। संकल्प विकल्प, सुख दुख पाप पुण्य, दया क्रोध इत्यादि की जोड़ियाँ इसी घुड़साल में बँधती हैं।

नरदेव—पर लात तुम्हीं खाते हो। (हँसता है)

महापिङ्गल—और पीड़ा आपको हो रही है?

नरदेव—सच तो। पिङ्गल! आज चित्त बड़ा उदास है, कहीं भी मन नहीं लगता!

महापिङ्गल—मन बैठे बैठे चरखे की तरह घूमता है। यदि रथ के चक्के की तरह आप ही घूमने लगिये, फिर तो वह धुरे की तरह स्थिर हो जायगा।

नरदेव—(हँसकर)—तो कहाँ घूमने चलूँ?

महापिङ्गल—देव! मृगया के समान और कौन विनोद है।

नरदेव—विषम बन की ओर चलूँ?

महापिङ्गल—नहीं नहीं उधर तो फाड़ खाने वाले जन्तु मिलते हैं। रमण्याटवी की ओर चलिये, जहाँ मेरे खाने योग्य जीव मिलें।

नरदेव—डरपोक। अच्छा उधर ही सही!

महापिङ्गल—(अलग)—बहुत शीघ्र प्रस्तुत हो गये। उधर तो सोंधी बास आती है (प्रकट)—अच्छा तो मैं अश्व प्रस्तुत करने को कहता हूँ।

नरदेव—शीघ्र (महापिङ्गल जाता है)—उधर वसन्त की

वनश्री भी देखने में आवेगी, साथ ही मनोराज्य की देवी का भी दर्शन होगा। अहा!

(महापिङ्गल दौड़ता हुआ आता है)

महापिङ्गल—महाराज! विनोद यहीं हो गया। आगई, तरला गाना सुनाने आगई है। दुहाई है, आज इसका नृत्य देखिये। कल मृगया को चलिये।

नरदेव—अच्छा।

(तरला आती है और गाती है—)

मेरे मन को चुरा के कहाँ ले चले।
मेरे प्यारे मुझे क्यों भुला के चले॥

ऐसे जले हम प्रेमानल में जैसे नहीं थे पतङ्ग जले।
प्रीति लता कुम्हिलाई हमारी विषम वायु बनकर क्यो चले॥

४

(रमण्याटवी में—विशाख का गृह, चन्द्रलेखा और विशाख)

विशाख—अच्छा तो प्रिये ! अब मैं जाता हूँ शीघ्र ही लौटकर यह मुखचन्द्र देखूँगा।

चन्द्रलेखा—ना ना—मैं न जाने दूँगी, तुम्हें कहीं जाने की क्या आवश्यकता है ? मैं कैसे रहूँगी ?

विशाख—मुझे कमी तो किसी बात की नहीं है फिर भी उद्योगहीन मनुष्य शिथिल हो जाता है। उसका चित्त आलसी हो जाता है इसलिये कुछ थोड़ा भी इधर-उधर कर आऊँगा तो मन भी बहल जायगा और कुछ लाभ भी हो जायगा।

चन्द्रलेखा—क्या इतने ही दिनों में तुम्हारा मन ऊब गया ? क्या मुझसे घृणा हो गई ? लाभ; यह तो केवल बहाना है। हा !

विशाख—बस इसी से तो मैं कुछ कहता नहीं था। क्या मैं भी तुम्हारी तरह बैठा रहूँ ? पर्याप्त सुख तुम्हें देना क्या मेरा कर्त्तव्य नहीं है ? सुख क्या बिना सम्पत्ति के हो सकता है ? तुम्हें मैं क्या समझाऊँ ?

चन्द्रलेखा—बस बस रहने दो। मैं तो तुम्हें पाकर अपने सुख में कोई भी कमी नहीं देखती हूँ—

सुख को सीमा नहीं सृष्टि में नित्य नये ये बनते हैं।
आवश्यकता जितनी बढ़ जावे उतने रूप बदलते हैं॥

सच्चा सुख सन्तोष जिसे है उसे विश्व में मिलता है।
पूर्ण काम के मानस में बस, शान्ति सरोरुह खिलता है॥

मुझे तो जीवनधन! तुम्हें पा जाने पर और किसी विशेषता की आवश्यकता नहीं। पर तुम्हारे मन में न जाने कितनी अभिलाषाएँ हैं।

विशाख—संसार उन्नति का साथी है, क्या मुझे उससे अलग रहना चाहिये? क्या इससे तुम मेरे प्रणय की कमी समझती हो?

चन्द्रलेखा—मैं क्या जानूँ कि संसार क्या चाहता है। मैं तो केवल तुम्हें चाहती हूँ! मेरे संकीर्ण हृदय में तो इतना स्थान नहीं कि संसार की बातें आ जायें। किन्तु—

अकेली छोड़कर जाने न दूँगी।
प्रणय को तोड़कर जाने न दूँगी॥
तुम्हें इस गेह से जाने न दूँगी।
हृदय को देह से जाने न दूँगी॥

विशाख—तो मुझे क्या करोगी?

चन्द्रलेखा—प्रियतम!

बनाकर आँख की पुतली तुम्हें बस।
तुम्हारे साथ मैं खेला करूँगी॥

विशाख—इस अनुरोध से जीवन सार्थक हुआ। अब तो

मेरा ही मन कहीं नहीं जाना चाहता। अच्छा, तब तक मैं यहीं थोड़ी दूर टहल आऊँ। क्या तुम भी मेरे साथ चलोगी ?

चन्द्रलेखा—अच्छा जब तक मैं धान रखवाती हूँ तब तक तुम आ जाना।

विशाख—अभी आता हूँ। (जाता है)

(दूसरी ओर से घोड़ा आकर धान खाने लगता है, चन्द्रलेखा स्वयं उसे हटा देती है। नरदेव और महापिङ्गल का प्रवेश)

नरदेव—स्वेद से भींगे हुए घोड़े की पीठ पर कैसी सुन्दर सुकुमार कर की छाप थी ? महापिङ्गल, यही स्थान है न ? अहा—

स्वीकृति प्रेम प्रशस्ति पर, कंचन कर की छाप।
हमें ज्ञात होती सखे, मिटा हृदय का ताप॥

(महापिङ्गल चन्द्रलेखा को दिखाता है)

महापिङ्गल—पर यह तो कहिये आप बिना कहे सुने किसी के घर में क्यों चले आये ?

नरदेव—इस सुहावने कानन में किसी का घर है यह जान कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और बिना कहे सुने ही तो अतिथि आते हैं।

महापिङ्गल—न न न ! आपके-से अतिथि को दूर ही से दण्डवत (चन्द्रलेखा की ओर देख कर) क्यों सुन्दरी ? (राजा भी उसे देखता है)

चन्द्रलेखा (राजा को पहचान कर नमस्कार करती है)—पृथ्वीनाथ, यह दासी आपसे क्षमा माँगती है। मैंने नहीं जाना कि घोड़ा श्रीमान का ही है।

महापिङ्गल—हाँ, हाँ, उसे जानने की क्या आवश्यकता थी, जिसने धान खाया उसने चपत पाया।

नरदेव—यह तुम्हारा ही घर है? सुन्दरी!

चन्द्रलेखा—यह झोपड़ी दासी की है। श्रीमान् यदि मृगया से थके हुए हों तो विश्राम कर लें। मैं आतिथ्य करने के योग्य नहीं, तब भी दीनों की भेंट फलमूल स्वीकार कीजिये।

महापिङ्गल—मैं तो हिरन के पीछे चौकड़ी भरते भरते थक गया हूँ। अब तो बिना कुछ भोजन किये मैं चल नहीं सकता! जो है सो क्या नाम एक पग भी।

(बैठ जाती है। चन्द्रलेखा राजा के लिये मञ्च लाती है। नरदेव भी बैठता है)

नरदेव—तो फिर सुन्दरी! तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ।

चन्द्रलेखा—(दूध लाती है)—श्रीमान्, कष्ट क्यों हो? जो लब्ध पदार्थ हैं उन्हें आदरणीय अतिथि के सामने रखने में मुझे कुछ संकोच नहीं है, और कृत्रिमता का यहाँ साधन भी नहीं है।

(राजा और पिङ्गल दूध पाते हैं)

महापिङ्गल—तृप्त हुआ—अब आशीर्वाद क्या दूँ. (कुछ ठहर कर) अच्छा तुम राजरानी हो।

चन्द्रलेखा—ब्राह्मण देवता यह कैसा अन्याय। आप मुझे

शाप न दीजिये। मेरी इस झोपड़ी में राजमन्दिर से कहीं बढ़ कर आनन्द है। हमारे नरपति के सुराज्य में हम लोगों को कानन में भी सुख है।

महापिङ्गल—ठीक है। खटमल को पुरानी गुदड़ी में ही सुख है। राज-सुख क्या सहज लभ्य है?

चन्द्रलेखा—यह क्या! प्रलोभन है या परिहास है?

नरदेव—नहीं, नहीं, प्रिये, यह नरदेव सचमुच तुम्हारा दास है।

चन्द्रलेखा—तो क्या मैं अपने को अधर्म्म के पंजे में समझूँ और नीति को केवल मौखिक कल्पना मान लूँ?

नरदेव—डरो मत, मैं तुम्हारा होकर रहूँगा। क्या मेरी इस प्रार्थना पर तुम न पिघलोगी।

चन्द्रलेखा—राजन्, मुझसे अनादृत न हूजिए, बस, यहाँ से चले जाइये।

महापिङ्गल—अच्छा अच्छा—जो है सो क्या नाम—चलिये महाराज।

(दोनों जाते हैं)

चन्द्रलेखा—भगवान्! तूने रूप देकर यह भी झंझट लगाया। देखूँ इसका क्या परिणाम होता है। प्राणनाथ से मुझे यह बात न कहनी चाहिये, उनका चित्त और भी चञ्चल हो जायगा। अब तो एक वही इससे बचा सकता है। प्रभो! एक तुम्हीं इस

दुःख से उबारने में समर्थ हो। दीनों के पुकार पर तुम्हीं तो आते हो। आओगे बचाओगे नाथ! कितना ही दुःख दो फिर भी मुझे विश्वास है कि तुम्हीं मुझे उनसे उबारोगे, तुम्हीं सुधारोगे, विपद्भंजन!—

कार्त्तिक कृष्णा कुहू क्रोध से काले करका भरे हुए
नीरद जलधि क्षुब्ध हो भीमा प्रकृति, हृदय भय भरे हुए।
खोजा हमने हाथ पकड़ ले साथी कोई नहीं मिला
दीपमालिका हुई वहीं पर तेरी छबि की, प्राण मिला।

५

(एक बौद्ध सन्यासी और नागरिक)

भिक्षु—अमिताभ ! यह कैसा जनपद है—जहाँ भिक्षुओं को देख कर कोई वन्दना भी नहीं करता, भिक्षा की तो कौन कहे ! (नागरिक को देखकर)–उपासक ! धर्मलाभ हो ।

नागरिक—मुझे तुम्हारा धर्म्म नहीं चाहिये । दया कीजिये, यहाँ से किसी और स्थान को पधारिये ।

भिक्षु—क्यों यहाँ पर क्या भगवान् की कृपा नहीं है ? क्या यह उनके करुणा-राज्य के बाहर है ?

नागरिक—मुझे इन चाटूक्तियों के उत्तर देने का अवकाश नहीं । भस्मावशेष विहार और भग्नस्तूपों से तुम्हें इसका उत्तर मिलेगा । तुम लोगों को गृहस्थ मोटा बना कर अब अपना अपकार न करावेंगे । बढ़ो यहाँ से !

(जाता है)

भिक्षु—धर्म्म भी क्या अधर्म्म हो जाता है ? पुण्य क्या पाप में परिवर्त्तित होता है ? भगवन् , यह तुम्हारे धर्मराज्य की कैसी व्यवस्था है ? क्या धर्म्म में भी प्रतिघात होता है ? उसका भी पतन और उत्थान है ?

(महापिङ्गल का प्रवेश--)

महापिङ्गल—एक दिन भीख न मिली और धर्म पर पानी फिर गया, सारी करुणा और विश्वमैत्री कपूर हो गई , क्यों श्रमणजी ?

भिक्षु—उपासक ! बात तो तुम यथार्थ कह रहे हो किन्तु तथागत के धर्म में ऐसी शिथिलता क्यों ?

महापिङ्गल—अजी धर्म जब व्यापार हो गया और उसका कारबार चलने लगा फिर तो उसमें हानि और लाभ दोनों होगा। इसमें चिन्ता क्या है। तुम्हें भोजन की आवश्यकता हो तो चलो मेरे साथ। किन्तु, थोड़ा काम भी करना होगा।

भिक्षु—और यदि मैं काम न करूँ तो ?

महापिङ्गल—भोजन न मिलेगा। मेरे ही यहाँ नहीं, प्रत्युत इस देश-भर में। शीघ्र बोलो, स्वीकार है ?

भिक्षु—क्या करना होगा ?

महापिङ्गल—जितने टूटे हुए विहार हैं उनमें से जिसके चाहो स्थविर बन जाओ।

भिक्षु—परिहास न करो, टूटे विहारों के लिये कोई लँगड़ा भिक्षु खोज लो।

महापिङ्गल—अजी, राजा प्रसन्न होंगे तो तुम्हारे लिये उसको फिर से बनवा देंगे, किन्तु हाँ, काम करना होगा।

भिक्षु—अभी तो काम भी नहीं समझ में आया।

महापिङ्गल—रमण्याटवी में एक दम्पति रहते हैं। स्त्री का नाम है चन्द्रलेखा। वह परम सुन्दरी है, इसी कारण महाराज उसको चाहते हैं।

भिक्षु—तो इसमें मैं क्या करूँ ?

महापिङ्गल—चैत्य की पूजा करने जब वह जाती है तब तुम वहाँ के देवता बनकर उसे आज्ञा दो कि वह राजा से प्रेम करे?

भिक्षु—तो फिर क्या होगा?

महापिङ्गल—होगा क्या—तुम धर्म्म-महामात्र होगे और मैं दण्डनायक हूँगा। चन्द्रलेखा रानी होगी।

भिक्षु—और यदि मैं न करू?

महापिङ्गल—तब तो राज्य-रहस्य जाननेवाला मुण्डित मस्तक लोटन-कबूतर हो जायगा।

भिक्षु—तथागत! यहाँ मैं क्या करूँ? (कुछ सोचकर)—अच्छा, मुझे स्वीकार है।

महापिङ्गल—तो चलो भोजन करो।

(दोनों जाते हैं)

६

(अँधेरी रात। स्थान चैत्य भूमि—प्रेमानन्द वहीं पर बैठा है)

प्रेमानन्द—

मान लूँ क्यों न उसे भगवान ?
नर हो या किन्नर कोई हो निर्बल या बलवान
किन्तु कोश करुणा का जिसका हो पूरा, दे दान।
मान लूँ क्यों न उसे भगवान ?
विश्व-वेदना का जो सुख से करता है आह्वान
तृण से त्रयस्त्रिंश तक जिसको समसत्ता का भान।
मान लूँ क्यों न उसे भगवान ?
मोह नहीं है किन्तु प्रेम का करता है सम्मान
द्वेषी नहीं किसी का, तब सब क्यों न करें गुणगान।
मान लूँ क्यों न उसे भगवान ?

यह चैत्य है। इसमें बुद्ध का शवभस्म है। भस्म से ही यह रक्षित है। और भी कितने जीवों का भस्म इसी स्थान पर पहले भी रहा होगा। चींटे यहाँ भी किसी शव को खोजते होंगे। वे ही शव होंगे और फिर वही भस्म होगा, उसी में फिर चींटे होंगे, ऐसा सुन्दर परिणाम संसार का है। अजी, अब तो मैं यहाँ से इस समय कहीं नहीं जाता। थोड़ी देर तक पड़ा-पड़ा चोरों को धोखा दूँगा, फिर देखा जायगा। इस अन्धेरी रात में किसी गृही को क्यों दुःख दूँ !

(प्रेमानन्द एक ओर लेट जाता है)

(भिक्षु का प्रवेश--)

भिक्षु—भयानक रात है—अभी तो सन्ध्या हुई है किन्तु विभीषिका ने अपनी काली चादर अच्छी तरह तान ली है। मैं तो यहाँ नहीं ठहरूँगा, चाहे बधिक सिर भले काट ले, पर यह प्रति-क्षण भय से बीसों बार मरना तो नहीं अच्छा। कीड़े मकोड़े से? ऊँहूँ! वह विषैले! जाने दो उनका ध्यान करना भी ठीक नहीं। फिर भाग चलूँ। क्या चन्द्रलेखा आधी रात को आती है? वह डरती नहीं, कामिनी है कि डाकिनी! अच्छा बैठ जाऊँ। (बैठता है। प्रेमानन्द नाक बजाता है जिसे सुनकर भिक्षु चौंक कर खड़ा हो जाता है।)

भिक्षु—नमो तस्स......नमो........ न न मैं नहीं भग-वतो...भग जाता हूँ (काँपता है। शब्द बन्द होता है, भिक्षु फिर डरता हुआ बैठता है।)

प्रेमानन्द—(अलग खड़ा होकर)—देखूँ तो यह दुष्ट यहाँ आज कौन कुकर्म करता है!

(फिर छिप जाता है। भिक्षु काँपता हुआ सूत्र-पाठ करने लगता है। लोमड़ी दौड़ कर निकल जाती है, भिक्षु घबड़ा कर जप-चक्र फेंक मारता है)

प्रेमानन्द—(स्वगत)-वाह, जप-चक्र तो सुदर्शन चक्र का काम दे रहा है! देखूँ इसकी क्या अभिलाषा है!

भिक्षु—(टूटा हुआ जप-चक्र लेकर बैठकर)—आज कैसी मूर्खता में हम लगे हैं—यहाँ तो भगवान लोमड़ी के रूप में आकर भाग जाते हैं और मुझे भी भगाना चाहते हैं; क्या करूँ? अभी वह नहीं आई। जब अपने पहले दिनों में, किसी की आशा में मैं अभिसार में बैठता था, तब इससे भी बढ़ी हुई भयानकता मेरा कुछ नहीं कर सकती थी; किन्तु अब वह वेग नहीं रहा, वह बल नहीं रहा! नहीं तो क्या बताऊँ—(अँकड़ता है)—अच्छा कोई चिन्ता नहीं, देखा जायगा। अब तो बिना काम किये मैं टलनेवाला नहीं। (दूर से प्रकाश होता है)—अरे यह क्या—हाँ हाँ, वही चन्द्रलेखा आती है! छिप जाऊँ! (चैत्यको दूसरी ओर छिप जाता है)

(हाथ में छोटा-सा दीप लिये चन्द्रलेखा आती है और दीप चैत्य के समीप रख कर नमस्कार करती है—)

चन्द्रलेखा—भगवन्! अपनी कल्याण-कामना के लिये मैं यह दीप प्रति सन्ध्या को जलाती हूँ। करुणासिन्धु! तुम कामना-विहीन हो, पर मैं अबला स्त्री और गृहस्थ, सुख की आशाओं से लदी हुई—फिर क्योंकर कामना न करूँ? आप विश्व के उपकार में व्यस्त हैं, किन्तु मेरा यह नव गठित छोटा-सा विश्व मेरे पर निर्भर करता है; चाहे यह मेरा अहंकार ही क्यों न हो, किन्तु मैं इसे त्यागने में असमर्थ हूँ।

मेरा वसन्तमय जीवन है। प्रभो! इसमें पतझड़ न आने पावे। मेरा कोमल हृदय छोटे सुख में सन्तुष्ट है, फिर बड़े सुख वाले

उसमें क्यों व्याघात डालते हैं! क्या उन्हें इतने में भी ईर्षा है जो संसार भर का सुख अपनाया चाहते हैं? इसका क्या उपाय है? हमारे सम्बल तुम्हीं हो नाथ!—

(गाती है—)

कर रहे हो नाथ, तुम जब, विश्वमङ्गल-कामना
क्यों रहें चिन्तित हमीं, क्यों दुःख का हो सामना?
क्षुद्र जीवन के लिये, क्यों कष्ट हम इतने सहें—
कर्णधार! सम्हाल कर, पतवार अपनी थामना।

(नमस्कार करती है और फूल चढ़ाती है)

आज देर हो गई। नित्य यहाँ पर आती हूँ किन्तु आज-सा हृदय कभी भयभीत नहीं हुआ। घर तो समीप ही है, चलूँ।

(दीप बुझ जाता है—चन्द्रलेखा त्रस्त होती है। भिक्षु चैत्य की आड़ से बोलता है—)

"चन्द्रलेखा, तेरी धर्म्मवृत्ति देख कर मैं प्रसन्न हुआ।"

(चन्द्रलेखा घुटना टेक देती है—)

चन्द्रलेखा—बड़ी कृपा, धन्य भाग्य!

चैत्य की आड़ से—किन्तु मैं तुझे सुख देना चाहता हूँ।

चन्द्रलेखा—भगवान् की करुणा से मैं सुख पाऊँगी।

चैत्य की आड़ से—तू नरदेव की रानी हो जा!

चन्द्रलेखा—(तमक कर) हैं—क्या यही भगवान् की वाणी है!

था, आप मेरी परीक्षा लिया चाहते हैं ! नहीं भगवन्, ऐसी आज्ञा न दीजिये । मैं सन्तुष्ट हूँ ।

चत्य की आड़ से—तुझे होना पड़ेगा ।

चन्द्रलेखा—तब तू अवश्य इस चैत्य का कोई दुष्ट अपदेवता है । मैं जाती हूँ, आज से इस राख के टीले पर कभी नहीं आऊँगी ।

(जाना चाहती है, भिक्षु बड़ा भयानक गर्जन करता है, चन्द्रलेखा घबड़ा कर गिर पड़ती है)

प्रेमानन्द—(निकल कर)—डरो मत, डरो मत, मैं आ गया । (प्रेमानन्द भिक्षु को पकड़ कर दबाता है, वह चिल्लाता है)—हाय हाय ! यहाँ तो कोई यक्ष है । छोड़ दे, अब मैं ऐसा न करूँगा ।

प्रेमानन्द—(भिक्षु को चन्द्रलेखा के सामने लाता हुआ)—बेटी ! डरो मत, यह पाखण्ड भिक्षु था । भगवान् किसी को पाप की आज्ञा नहीं देते, धैर्य्य धरो ।

(तलवार लिये हुए विशाख का प्रवेश—)

विशाख—गुरुदेव ! प्रणाम । प्रिये, यह क्या !

प्रेमानन्द—यह दुष्ट भिक्षु चन्द्रलेखा को डरा कर राजकीय प्रलोभन देता था । मैं यहीं था, चन्द्रलेखा-सी सती का इन्द्र भी अपकार नहीं कर सकता । किन्तु, अब इसे अकेली पूजा को न भेजना ।

विशाख—क्यों रे दुष्ट ! काट; लूँ तेरा मुँड़ा हुआ सिर ! (तलवार उठाता है, भिक्षु गिर पड़ता है, प्रेमानन्द उसे रोक लेता है ।)

प्रेमानन्द—क्षमा सर्वोत्तम दण्ड है विशाख !

(यवनिका-पतन)

तृतीय अङ्क

१

(स्थान—वितस्ता का तट, नरदेव और महापिङ्गल)

नरदेव—पिङ्गल ! तुम जानते हो कि प्रतिरोध से बड़ी शक्तियाँ रुकती नहीं, प्रत्युत उनका वेग और भी भयानक हो जाता है। वही अवस्था मेरे प्रेम की है। इसने कोमलता के स्थान में कठोरता का आश्रय लिया है। और, माधुर्य्य छोड़ कर भयानक रूप धारण किया है।

महापिङ्गल—किन्तु मुझे तो प्रेम की जगह यह कोई प्रेत समझ पड़ता है, जो आपके हृदय पर अधिकार जमाये है।

नरदेव—क्या मेरे प्रेम की तू अवहेला किया चाहता है ? क्या उसकी परीक्षा लिया चाहता है ? अभी मैं उसकी, आज्ञा से यह अपनी कटार अपने वक्षस्थल में उतार सकता हूँ।

(कटार निकालता है)

महापिङ्गल-यथार्थ है श्रीमन्, उसे भीतर कीजिये ; नहीं तो मेरी बुद्धि घूमने चली जायगी। अपना हृदय क्या वस्तु है उसकी आज्ञा लिये बिना सहस्रों के हृदय का रक्त यह कटार पी सकती है, और क्या, प्रेम इसे कहते हैं। हाँ जी, कुछ ऐसा-वैसा नहीं, प्रेम भी तो राजाओं का है।

(एक सुन्दर नाव पर रानी का प्रवेश, डाँड़ें चलानेवाली सखियाँ गा रही हैं—)

नदी नीर से भरी।

संचित जल ले शैल का,

हुई नदी में बाढ़।

मानस में एकत्र था,

इधर प्रणय भी गाढ़॥

नदी नीर से भरी।

नेह--नाव उतरा चली,

लगते हलके डाँड़।

लगती है किस कूल पर,

बस्ती है कि उजाड़॥

मेरी स्नेह की तरी।

नरदेव—अहा! महारानी भी आज इधर आ गईं।

महापिङ्गल—(धीरे से)—भागिये।

महारानी—(नाव से उतर कर) महाराज! दासी का आगमन कुछ कष्टदायक तो नहीं हुआ?

नरदेव—भला प्रिये, यह क्या कहती हो!

महापिङ्गल—सच बोलिये पृथ्वीनाथ!

महारानी—(हंसकर)—क्या कहता है पिङ्गल?

महापिङ्गल—जङ्गल में मङ्गल।

महारानी—प्राणनाथ ! आज कितने दिनों पर दर्शन हुए।

नरदेव—क्या मैं कहीं बाहर गया था ?

महारानी—मैं तो अपने को दूर ही समझती हूँ।

महापिङ्गल—यह रेखागणित का सिद्धान्त तो मेरी समझ में न आया।

महारानी—

दूर जब हो गया कहीं मन से
क्या हुआ तन लगा रहे तन से।
स्वप्न में सैर सैकड़ों योजन
कर चुका मन; न छू गया तन से॥

नरदेव—(लज्जित होकर)—प्रिये, यह क्या कह रही हो !

महारानी—नाथ ! कैसा शोचनीय प्रसंग है कि मैं ऐसा कहूँ—

मधुपान कर चुके मधुप, सुमन मुरझाये
शीतल मलयानिल गया कौन सिंचवाये
पत्ते नीरस हो गये सुखा कर डाली
चलती उपवन में लूइ कहाँ हरियाली !

नरदेव—(हाथ पकड़ कर)—प्रिये, तुमको ऐसी बातें न कहनी चाहिए।

महारानी—वही तो मैं भी चाहती थी, किन्तु प्राणनाथ की कल्याण-कामना मुझे मुखर बनाती है।

नरदेव—क्या मुझसे तुम विशेष बुद्धिमान हो ?

महारानी—यह मैंने कब कहा ? पर राज्य की व्यवस्था देखिये कैसी शोचनीय है ! आपकी मानसिक अवस्था तो और भी......

नरदेव—बस जाओ, इन बातों को मैं सुनना नहीं चाहता। जी बहलाने के लिये कुछ दिन उपवन में चला आया, यही क्या बड़ा भारी अन्याय हुआ !

(बौद्ध भिक्षु को लिये प्रहरियों का प्रवेश—)

भिक्षु—न्याय ! न्याय !! मैंने क्या किया है, हाय हाय !!

नरदेव—क्या बात है ?

प्रहरी—महापिङ्गल जी ने कहा कि यह भिक्षु राजाज्ञा से कारागार में रक्खा जाय। यह वहाँ रहता नहीं, अपना सिर पटक कर प्राण देना चाहता है।

महापिङ्गल—तो तुम लोगों को इस मुड़े हुए सिर के लिये इतनी क्या चिन्ता है; ले जाओ इसे।

महारानी—ठहरो ! भिक्षु का क्या अपराध है ?

नरदेव—मैं तो नहीं जानता; क्यों जी, क्या बात है ?

भिक्षु—महापिङ्गल ने मुझे धमकाया कि यदि तुम उस पुराने चैत्य पर जाकर चन्द्रलेखा को डराकरके महाराज से मिलने पर न विवश करोगे तो तुम शूली पर चढ़ाये जाओगे।

(नरदेव और रानी महापिंगल को देखती हैं; महापिंगल भागना चाहता है)

महारानी—सावधान होकर खड़े रहो। कहो, क्या तुमने महाराज के आदेश से ही यह काम कराया था ?

नरदेव—मैंने कब इसे कह......

महापिङ्गल—महाराज, जब आप इतने व्याकुल हुए कि हाँ... तब मैंने ऐसा प्रबन्ध किया था, जो है सो—

नरदेव—तुम झूठे हो।

महारानी—प्रहरियो, इस भिक्षु को छोड़ दो और महापिंगल को बाँध लो।

(प्रहरी आगे बढ़ते हैं)

महापिङ्गल—दुहाई ! चन्द्रलेखा मुझे नहीं प्यारी थी महाराज! आप बचाइये, नहीं तो फिर ....

नरदेव—प्रिये ! उसे जाने दो, वह मूर्ख है।

महारानी—महाराज ! आप देश के राजा हैं और हमारे पति हैं, क्या इसी तरह राज्य रहेगा ? क्या अन्याय का घड़ा नहीं फूटेगा ? क्या आपको इसका प्रतिफल नहीं भोगना पड़ेगा ? मान जाइये। ऐसे कुटिल सभासदों का संग छोड़िये। इसे दंड पाने दीजिये।

महापिङ्गल—दुहाई महाराज ! चन्द्रलेखा के डर से यह मुझे मरवाना चाहती है, न्याय-वाय कुछ नहीं।

नरदेव—(स्वगत)—आह चन्द्रलेखा ! (प्रहरियों से)—छोड़ो जी, जाओ तुम लोग।

महापिङ्गल—बड़ी दया हुई। इसी रानी की सौतिया-डाह से तो वह झिझकती है।

महारानी—चुप नरक के कीड़े! तेरी जीभ बिजली से भी चपल है।

नरदेव—रानी! तुम अब जाओ, अपने महल में जाओ।

महारानी—आपने कुपथ पर पैर रक्खा है और मैं आपको बचा न सकी। परिणाम बड़ा ही भयंकर होनेवाला है। वह मैं नहीं देखना चाहती। किन्तु, कहे जाती हूँ कि अन्याय का राज्य बालू की भीत है। अब मैं रह कर क्या करूँगी, मैं चली, किन्तु सावधान! (नदी में कूद पड़ती है)

(पट-परिवर्तन)

२

(विशाख और चन्द्रलेखा प्रकोष्ठ में)

विशाख—प्रिये ! क्या किया जाय ?

चन्द्रलेखा—भगवान ही सहाय हैं। धैर्य्य धारण करो।

विशाख—कामान्ध नरपति से रक्षा कैसे होगी ? चलो प्रिये ! हिमवान की बहुत-सी सुरक्षित गुफाये हैं, प्रकृति के आश्रय में वहीं सुख से रहेंगें।

चन्द्रलेखा—मैं तो अनुचरी हूँ। किन्तु अब समय कहाँ है, पिताजी को तो समाचार भेज चुकी हूँ।

विशाख—हाँ, जो विपत्ति में आश्रय है, जो परित्राण है, वही यदि विभीषिका की कृत्या का रूप धारण करे तो फिर क्या उपाय है ! राजा के पास प्रजा न्याय कराने के लिये जाती है, किन्तु जब वही अन्याय पर आरूढ़ है तब क्या किया जाय! (कुछ सोचता है)—कोई चिंता नहीं प्रिये ! डरो मत।

(महापिंगल का प्रवेश—)

महापिङ्गल—विशाख ! मैं तुम्हारी भलाई के लिये कुछ कहा चाहता हूँ।

विशाख—बस चुप रहो, तुम ऐसे नीचों का मुँह भी देखने में पाप है !

महापिंगल—चन्द्रलेखा को राजा के महल में जाना ही होगा। क्यों तब और व्यर्थ प्राण जावें ?

(विशाख तलवार खींच लेता है-)

विशाख—अच्छा सावधान! इस अपमान का प्रतिफल भोगने के लिये प्रस्तुत हो जा!

(महापिंगल भागना चाहता है, चन्द्रलेखा बचाना चाहती है,
किन्तु विशाख की तलवार उसका प्राण,
संहार कर देती है)

चन्द्रलेखा—अनर्थ हो गया प्राणनाथ! यह क्या किया! अब तो भविष्य भयानक होकर, स्पष्ट है।

विशाख— मरण जब दीन जीवन से भला हो,
सहें अपमान क्यों फिर इस तरह हम।
मनुज होकर जिया धिक्कार से जो,
कहेंगे पशु गया बीता उसे हम॥

(सैनिकों का प्रवेश। विशाख को घेर लेते हैं। वह तलवार चलाता
हुआ बन्दी होता है। चन्द्रलेखा भी पकड़ ली जाती है।)

(सुश्रवा का प्रवेश··)

सुश्रवा—यह क्या अनर्थ?

सैनिक—देखता नहीं है—राजानुचर महापिङ्गल का यह शव है। इसी विशाख ने अभी इसकी हत्या की है।

सुश्रवा—क्यों वत्स विशाख! यह क्या सत्य है?

विशाख—सत्य है। इसने मेरा अपमान किया और मेरे

सामने मेरी स्त्री को प्रलोभन दिया—उसे सामान्य वेश्या से भी नीच समझ लिया !

सैनिक—इसका निर्णय तो महाराज स्वयं करेंगे । अब चलो यहाँ से ।

सुश्रवा—ठीक तो, किन्तु यह बताओ चन्द्रलेखा ने क्या अपराध किया है—उसे क्यों ले जाते हो ?

चन्द्रलेखा—मुझे जाने दो बाबा ! मैं साथ जा रही हूँ । कोई चिन्ता नहीं ।

सैनिक—बूढ़े ! चुप रह । हम राजाज्ञा के विरुद्ध कुछ नहीं कर रहे हैं ।

(दोनों को लेकर जाता है । रमणी और इरावती तथा कुछ नागों का प्रवेश-)

सुश्रवा—चन्द्रलेखा गई, विशाख भी गया, हा...

रमणी—आने में देर हुई, कोई चिन्ता नहीं ।

पहला नाग—देवी ! तब क्या उपाय है ?

दूसरा नाग—चन्द्रलेखा का उद्धार करना ही होगा ।

तीसरा नाग—चाहे प्राण भले ही जावें, इससे पीछे न हटूँगा. जो देवी की आज्ञा हो ।

चौथा नाग—तो मैं जाता हूँ और भाइयों को बुलाता हूं ।

रमणी—शीघ्र जाओ ।

(प्रेमानन्द का प्रवेश-)

प्रेमानन्द—किन्तु क्या अन्याय का प्रतिफल अन्याय है? क्या राजा मनुष्य नहीं है? रक्त-मांस का ही उसका भी शरीर है, पाप उस से भी होता है, फिर क्या उसे भ्रम नहीं हो सकता?

रमणी—भ्रम नहीं, यह स्पष्ट समझ कर किया गया, अन्याय है।

प्रेमानन्द—रमणी! अग्नि में घी न डालो! समझ से काम लो।

रमणी—तो हम लोग चुपचाप बैठें?

इरावती—और, बहिन चन्द्रलेखा को न खोजें?

प्रेमानंद—देश की शान्ति भङ्ग करना और निरपराधों को दुख देना इसमें तुम्हें क्या मिलेगा? देखो, सावधान हो; इस उत्तेजना राक्षसी के पीछे न पड़ो—एक अपराध के लिये लाखों को दण्ड न दो! हरी भरी भूमि के लिये पत्थर वाले बादल न बरसो! अन्यथा, पीछे पछताओगे।

सुश्रवा—तब क्या करें?

प्रेमानन्द—सत्य को सामने रक्खो, आत्मबल पर भरोसा रक्खो, न्याय की माँग करो।

सब—अच्छा तो पहले यही किया जाय।

(पट-परिवर्त्तन)

३

(तरला का गृह)

भिक्षु—(आपही आप)—जब भिक्षु होने पर भी माँगे भीख न मिली, तो हम क्या करें ? ऐं बोलो ! आकाश की स्याही, चन्द्रमा की चाँदनी, कब तक धोया करें ? बिल्ली कब तक छीछड़ों से अपना जी चुरावे। गड़बड़झाला न करें तो क्या करें। भगवान तुम चाहे कुछ हो या न हो, पर संकट के समय कभी काम आ जाते हो, ऐं बोलो, फिर क्यों न तुम्हें मान लेने के लिये जी चाहे। लेकिन हाँ, सब उसी समय तक; फिर, तुम हो—हुआ करो।

अरे बाप रे !—(काँपता है)—जब चन्द्रलेखा का पति तलवार निकाल कर—ओह ! नहीं, बच गये बच ; अजी हाँ, वह भी बिल्ली की राह काटने वाली सायत थी। चलो अब तो पौबारह है—भरा घड़ा मिला है ! चुप, क्या बकता है। अरे निर्भयानन्द, तुझे क्या हो गया है—(सोच कर)—हाँ, वह यक्षिणी सोना बनानेवाली। आ तो इस टूटे-फूटे घर में सोने की पाटी, पन्ने का पावा, चाँदी की चूल्ही और मट्टी का तवा ? अगड़-बगड़-रगड़-झगड़ साध तो भगड़—(तरला को आते देख आँख मूँद कर बैठ जाता है)

(पोटली लिये हुए तरला का प्रवेश—)

तरला—लीजिये महाराज ! यह भिक्षा प्रस्तुत है। दरिद्र की

रूखी सूखी ग्रहण कीजिये। जूठन गिरा कर मेरा घर पवित्र करिए।

भिक्षु—(आँख खोल कर)—उपासिका ! तू आ गई। अहा, कैसी पवित्र मूर्ति है ! तुझे शान्ति मिले। अरे यह क्या लाई, भिक्षा ? नहीं-नहीं, तू बड़ी दुखी है, मैं तेरा भिक्षा नहीं ग्रहण करूँगा। मैं यों ही प्रसन्न हूँ। —(जाना चाहता है)

तरला—(मन में)—अहा कैसे महात्मा हैं—(प्रकट)—भगवन्, मुझसे अवश्य कोई अपराध हुआ, आप रूठे हुए जाते हैं। दया कीजिये। क्षमा कीजिये।

भिक्षु—नहीं नहीं, दरिद्र की भिक्षा सच्चे साधु नहीं लेते हैं। तुझे दुःख होगा, अपने को क्या, कोई न कोई भगवान का भक्त मिल ही जायेगा। मुझे समाधि में ज्ञात हुआ कि तुझे बड़ा कष्ट है।

तरला—(रोने लगती है)—भगवन् , यह क्या ! आप तो अन्तर्य्यामी हैं। आप सत्य कहते हैं—मैं सचमुच ही बड़ी दुखिया हूँ। अभी थोड़े दिन हुए मेरे स्वामी किसी दुष्ट के हाथ मारे गये हैं, और मेरे लिये कुछ जीवन-वृत्ति भी नहीं छोड़ गये हैं।

भिक्षु—(स्वगत)—मैं जानता हूँ, तू महापिङ्गल की स्त्री है। उसी दुष्ट ने तो मेरी दुर्दशा कराई है। राजा का सहचर ही था, बड़ा मालदार रहा है। अच्छा—(प्रकट)—विचार था कि तुझे दुःख से बचा लें, किन्तु नहीं, वैसा करने से हम विरक्त लोगों को

बड़े झगड़े में पड़ना पड़ता है—सब पीछे लग जाते हैं।—(सोचने की ढंग करता है)—नहीं नहीं, फिर भी दया आती है।

तरला—भगवन्, दया कीजिये, मेरा उपकार कीजिये—मैं दासी हूँ !

भिक्षु—एक बार दया कर देने से हल्ला मच जाता है, सभी तङ्ग करने लगते हैं कि मुझे भी धनी बना दो। किन्तु तुम पर तो...

तरला—(स्वगत)—क्या यह सोना बनाना जानते हैं ? (प्रकट)—भगवन्, फिर क्यों नहीं दया करते। यह दुखिया भी सुखी होकर आपका गुण-गान करेगी।

भिक्षु—अच्छा आँख मूँद कर हाथ जोड़, मैं भी देखूँ कि तेरा भाग्य कैसा है।—(तरला वैसा ही करती है)—इचिलु मिचिलु खिचिलु बयुजारे श्वयुनश्वे खिविटि खिचिटि फट् (ठहर कर)—ठीक है, खोल दे आँख।

तरला —(आँख खोल कर)—क्या देखा भगवन् !

भिक्षु—समुद्र की रेत की तरह !

तरला—क्या रेत की तरह ?

भिक्षु—हाँ, रेत की तरह लम्बा चौड़ा चमकता हुआ उज्ज्वल...

तरला—उज्ज्वल ! क्या उज्ज्वल ?

भिक्षु—(क्रोध से)—तेरा कपाल और क्या ?

तरला—(पैर पकड़ कर)—खुल गये, भाग्य खुल गये !

भिक्षु—(सिर हिलाता है)—खुल गये, अवश्य खुल गये। पर तू सब से कहेगी और मैं तङ्ग किया जाऊँगा।

तरला—कभी नहीं, जो आज्ञा कीजिये।

भिक्षु—(कड़क कर)—अच्छा तो ला फिर जो तेरे पास चाँदी ताँबा हों। ताँबा चाँदी हो जाय, चाँदी सोना हो जाय।—(ऐंठता हुआ)—चल तो स्वर्णयक्षिणी—हाँ देर न कर!

(तरला जाकर घर में से गहने निकाल लाती है। भिक्षु उसे देखकर विचित्र चेष्टा करता है—)

भिक्षु—अच्छा, इचिलु मिचिलु खिचिलु वयुजारे श्वयुनश्वे खिचिट खिचिट फट् स्वर्णं कुरु कुरु स्वाहा—(गड्ढा दिखा कर)—रख दे इसी में—(रखने पर उसे ढक देता है)—आँख बन्द कर हाथ जोड़—(तरला वैसा ही करती है। भिक्षु मन्त्र पढ़ाता है, वह पढ़ती है।)

भिक्षु—अच्छा तो देख।

तरला—देखूँ क्या, आँखें तो बन्द हैं; खोल दूँ?

भिक्षु—न न न न न न, ऐसा न करना, नहीं तो सब छू मन्तर!

तरला—तब क्या करूँ?

भिक्षु—सुन, जब तक हम देवता की पूजा करके ध्यान लगाते हैं, नैवेद्य चढ़ाते हैं, समझा न—बोलो कहो!

तरला—बोलो कहो क्या कहूँ?

भिक्षु—चुप रहो, जो मैं कहता हूँ वह।

तरला—वही तो।

भिक्षु—नैवेद्य लगने पर सब एकदम छूमन्तर।

तरला—सब एकदम छू मन्तर! —(सिर हिलाता है)

(भिक्षु पूजा का ढोंग करता है। तरला आँख बन्द किए है। भिक्षु गड्ढे में से सब निकाल कर बाँधता है।)

भिक्षु—उपासिका, मैं इसी चतुष्पथ पर यक्ष-बलि देकर आता हूँ। तब इसको खोलना होगा। बस सब एकदम छू मन्तर!

तरला—सब छू मन्तर?

भिक्षु—तब तक आँख न खोलना, नहीं तो सब ..

तरला—क्या छू मन्तर?

भिक्षु—हाँ हाँ, चुप होकर मन्त्र का जप-ध्यान करो।

(तरला 'खिचिटि खिचिटि स्वाहा' जपती है। भिक्षु सब लेकर चम्पत हो जाता है। तरला थोड़ी देर बाद आँख खोलती है। गड्ढा खाली देख कर कहती है—'हायरे सब छू मन्तर!')

(गिर पड़ती है)

४

(स्थान—राजदरबार। राजा नरदेव सिंहासन पर। विशाख और चन्द्रलेखा बन्दी के रूप में।)

नरदेव—क्यों विशाख! हमारे उपकारों का क्या यही प्रतिफल है कि तुम मेरा अपमान करते हुए मेरे सहचर की हत्या करो? तुम्हारा इतना साहस!

विशाख—नहीं जानता हूँ कि उस समय क्या उत्तर दिया जाता है जब कि अभियोग ही उल्टा हो और जो अभियुक्त हो—वही न्यायाधीश हो!

नरदेव—ब्राह्मणत्व की भी सीमा होती है, राज्यशासन के वह वहिर्भूत नहीं है। क्या अपने दण्ड का तुम्हें ध्यान नहीं है?

विशाख—न्याय यदि सचमुच दण्ड देता है तो मैं नहीं कह सकता कि हम दोनों में, किसे वह पहिले मिलेगा।

नरदेव—चुप रहो। दौवारिक!

दौवारिक—(प्रवेश करके)—पृथ्वीनाथ! क्या आज्ञा है?

नरदेव—इस विशाख ने अपराध स्वीकार किया है। इसका सर्वस्व अपहरण करके इसे केवल राज्य से बाहर कर दो।

चन्द्रलेखा—और मुझे क्या आज्ञा है?

नरदेव—तुम्हारा विचार फिर होगा।

चन्द्रलेखा—मेरा अपराध?

नरदेव—मैं सब बातों का उत्तर देने को बाध्य नहीं।

विशाख—तो मैं भी बाहर जाने को बाध्य नहीं ।

नरदेव—इतनी धृष्टता! प्रहरी, ले जाओ इसे।

चन्द्रलेखा—मुझे भी ।

नरदेव—(क्रुद्ध होकर)—दोनों को ले जाओ, शूली दे दो !

(बाहर हल्ला होता है—'दुहाई है !')

नरदेव—देखो तो बाहर क्या है !

(एक बाहर जाकर देख आता है)

दौवा०—महाराजाधिराज, नाग जाति की एक बड़ी जनता महाराज से प्रार्थना करने आई है।

नरदेव—उसमें से थोड़े लोग यहाँ आवें।

(जाकर कुछ नाग सर्दारों को ले आता है—)

नाग—न्याय ! न्याय !!

नरदेव—कैसा आतङ्क है ! क्यों तुम लोग चिल्ला रहे हो ?

सुश्रवा—आपके सैनिकों ने मेरी कन्या चन्द्रलेखा और जामाता विशाख को अकारण पकड़ रखा है, उसे छोड़ दीजिये।

नरदेव—उसने हत्या की थी। उसके अपराधों का विचार हुआ है कि वह देश से निकाला जाय। इस लिए तुम लोगों को अब उस विषय में कुछ न बोलना चाहिए।

नाग-रमणी—तो सारे सभासदों के और नागरिकों के सामने

राजा! मैं तुम्हें अभियुक्त बनाती हूँ। जो दोष कि एक निरपराध नागरिक को देश-निकाला दे सकता है वही अपराध देखूँ तो सत्ता-धारी का क्या कर सकता है? क्या तुम चन्द्रलेखा पर आसक्त नहीं हो, और क्या तुमने एकान्त में उससे प्रणय-भिक्षा नहीं की थी? क्या तुम्हारी ओर से प्रेरित हो कर महापिङ्गल नहीं गया था? क्या अपने पति को छोड़कर चन्द्रलेखा से राजरानी बनने का घृणित प्रस्ताव नहीं किया गया? बोलो, उत्तर दो!

नरदेव—अभागिनी! क्या तेरी मृत्यु निकट है? क्या स्त्री होने की ढाल तुझे उससे बचा लेगी? अपनी जीभ रोक!

चन्द्रलेखा—यह सब सत्य है कि राजा नरदेव मेरी प्रणय-कामना में पड़ कर यह अनर्थ करा रहे हैं—धर्म्म की दुहाई है!

जनता—अनर्थ! न्याय के नाम पर अत्याचार!! इसका सुविचार होना चाहिये।

नरदेव—क्या तुम लोगों को कुछ विचार नहीं है कि हम न्यायाधिकरण के सामने हैं।

जनता—न्यायाधिकरण में क्या अत्याचार ही होता है? हम अन्यायपूर्ण आज्ञा नहीं मानेंगे।

नरदेव—तुम लोग शान्ति के साथ घर लौट जाओ।

जनता—तो हमें चन्द्रलेखा और विशाख मिल जावें।

नरदेव—कभी नहीं। अपराधी इस तरह नहीं मुक्त हो सकता। नियम यों नहीं भङ्ग किये जा सकते।

जनता—तो हम भी नहीं टलेंगे !

(प्रेमानन्द का प्रवेश—)

प्रेमानन्द—राजन्, सावधान ! यह क्या ? बच्चे जब हठ करें तो क्या पिता भी रोष से उन्हीं का अनुकरण करे ? क्या राजा प्रजा का पिता नहीं है ? जो एक बार उसका मचलना नहीं सम्हाल सकता ।

नरदेव—यह मठ नहीं है भिक्षु ! तुम्हें यहाँ बोलने का अधिकार नहीं है ।

प्रेमानन्द—राजन् ! सुविचार कीजिये ।

नरदेव—महादण्डनायक !

द० ना०—क्या आज्ञा है महाराज !

नरदेव—इन लोगों को बाहर निकाल दो और चन्द्रलेखा तथा विशाख को अभी शूली न दी जावे ।

प्रेमानन्द—इन्हें छोड़ दीजिये । राजन्, प्रजा को सुख दीजिये । क्या आप ही ने इसी एक स्त्री पर अत्याचार होने के कारण सैकड़ों विहार नहीं जलवाये ? क्या वह न्याय दूसरों के लिये ही था ? भगवान् की गर्व्वहारिणी योगमाया की यह उज्ज्वल सृष्टि है । नरनाथ ! वह तुम्हारा न्याय नहीं था, न्याय का अभिमान मात्र था । आज तुम वही पाप कर रहे हो ! कैसा रहस्यमय प्रतिघात है । इसी से कहता हूँ कि भगवान् की करुणा ही सबको न्याय देती है । तुम मान जाओ ।

नरदेव—चले जाओ सन्यासी, क्यों तुम व्यर्थ अड़ते हो। यह नहीं हो सकता। निकालो जी, इन्हें बाहर करो।

सब नाग—तब हमलोगों पर कोई उत्तरदायित्व नहीं, और विना विशाख और चन्द्रलेखा को लिये हम नहीं जायँगे।

नरदेव—(कड़क कर)—मारो इन दुष्टों को।

(सैनिक प्रहार करते हैं। 'आग आग !'—का हल्ला। नरदेव घबरा कर भीतर भागता है। चन्द्रलेखा और विशाख को लेकर नाग लोग भागते हैं। आग फैल जाती है। प्रेमानन्द, राजा को अग्नि में से घुसकर उठा लाता है, और पीठ पर लादकर चला जाता है।)

५

(कानन में इरावती का कुटीर)

इरावती—(प्रवेश करके)—क्रोध ! प्रतिहिंसा और भयानक रक्त ! ! यह क्या सुन रही हूँ ? भगवन्, तुमने चिरकाल से मनुष्य को किस मायाजाल में उलझाया है ! वह अपनी पाशव-वृत्ति के वशीभूत होकर उपद्रव कर ही बैठता है—सब समझदारी, सारा ज्ञान, समस्त क्रमागत उच्च सिद्धान्त बुल्लों के समान विलीन हो जाते हैं ; और उठने लगती हैं भयानक तरंगें !

चन्द्रलेखा को लेकर इतना बड़ा उपद्रव हो जायगा, कौन जानता था । अहा स्नेह, वात्सल्य, सौहार्द, करुणा और दया सब विलीन हो गए—केवल क्रूरता, प्रतिहिंसा का आतङ्क रह गया । इतना दुःखपूर्ण संसार क्यों बनाया मेरे देव ! यह तुम्हारी ही सृष्टि है । करुणासिन्धु ! मेरे नाथ !—

(प्रार्थना करती है—)

दीन दुखी न रहे कोई
सुखी हों सब लोग
देश समृद्धि प्रपूरित हो—जनता नीरोग
कूट नीति टूटे जग में—सबमें सहयोग
भूप प्रजा समदर्शी हों—तजकर सब ढोंग
दीन दुखी न रहे०

(अचेत नरदेव को लिये हुए प्रेमानन्द का प्रवेश—)

इरावती—(देखकर)—अहा, घायल है कोई ! और आप महात्मा ! इन्हें ढोकर ले आ रहे हैं—तो क्या मैं भी कोई सेवा कर सकती हूँ ?

प्रेमानन्द—(नरदेव को लिटाते हुए)—सेवा करने का सभी को अधिकार है देवि ! इसे थोड़ा-सा दूध चाहिये।

(इरावती जाती है। प्रेमानन्द किसी जड़ी का रस नरदेव के मुँह में टपकाता है। वह कुछ चैतन्य होता है। इरावती दूध लाती है।)

प्रेमानन्द—अभी तुम्हें बल नहीं है लो थोड़ा-सा दूध पी लो—(इरावती दूध पिलाती है)

नरदेव—(स्वस्थ होकर)—देवदूत ! मेरे अपराध क्षमा कीजिये—

प्रेमानन्द—अपराध ! अपराध तो नरदेव ! एक भी क्षमा नहीं किये जाते और उसी अवस्था में अपराधों से अच्छा फल होता है। सज्जनों के लिये वही उदाहरण हो जाता है। किन्तु तुम्हें तो पूर्ण दण्ड मिला और अब तुम तपाए हुए सोने की तरह हो गये। अभी तुम्हारी व्यथाएँ शान्त नहीं हुईं, इसलिये तुम लेटो। थोड़ी-सी जड़ी और लाकर तुम्हारे अङ्गों पर मल दूँ, जिससे तुम पूर्ण स्वस्थ हो जाओ। —(जाता है)

नरदेव—हाय हाय, मैंने क्या किया—एक पिशाच-ग्रस्त मनुष्य की तरह मैंने प्रमाद की धारा बहा दी ! मैंने सोचा था कि उस

नदी को अपने बाहुबल से सन्तरण कर जाऊँगा, पर मैं स्वयं बह गया। सत्य है, परमात्मा की सुन्दर सृष्टि को, व्यक्तिगत मानापमान द्वेष और हिंसा से किसी को भी आलोड़ित करने का अधिकार नहीं है। प्रायः देखा जाता है कि दूसरों के दोष दिखाने वाले घटनाचक्र से जब स्वयं किसी न्याय को करने लगते हैं तो अपराधी से भी भयानक हो जाते हैं। न्याय और स्वतंत्रता के बदले घोर 'आवश्यक' बहाने वाले परतंत्र बन्धन का पाश अपने हाथ में लेकर मानव-समाज के सामने प्रकट होते हैं। इसी लिये प्रकृति के दास मनुष्य को—आत्मसंयम, आत्मशासन की पहली आवश्यकता है। नहीं तो वह प्रमादवश अनर्थ ही करता है ...।

प्रेमानन्द—(प्रवेश करके)—ठीक है नरदेव! यह विचार तुम्हारा ठीक है। प्रमाद, आतङ्क, उद्वेग आदि स्वप्न हैं, अलीक हैं। किन्तु क्या इसे पहले भी विचार किया था? क्या मानवता का परम उद्देश तुम्हारी अविचार-बन्या में नहीं बह गया था? विचारो, सोचो। फिर राजा होना चाहते हो?

नरदेव—नहीं भगवन्! अब नहीं। उस प्रमादी मुकुट को मैं स्वीकार नहीं करूँगा। हृदय में असीम घृणा है। उसे निकालने दीजिये। गुरुदेव, मैं आपकी शरण हूँ; मुझे फिर शान्ति दीजिये।

प्रेमानन्द—नरदेव! तुम आज सच्चे राजा हुए। तुम्हारे हृदय पर आज ही तुम्हारा अधिकार हुआ। तुम्हारा स्वराज्य तुम्हें

मिला। हृदय राज्य पर जो अधिकार नहीं कर सका, जो उसमें पूर्ण शान्ति न ला सका, उसका शासन करना एक ढोंग करना है। भगवन् तुम्हारा सार्वत्रिक कल्याण करेंगे।

(चन्द्रलेखा का एक बालक को गोद में लिये हुए आना—)

चन्द्रलेखा—महात्मन्! यह बालक राजमन्दिर में मिला है। उत्तेजित नागों ने इसे राजकुमार समझ कर मार डालना चाहा। पर, मैं किसी तरह इसे बचा लाई।

नरदेव—(देख कर)—भगवन्, तू धन्य है, इस प्रकाण्ड दावाग्नि में नन्हीं सी दूब तेरी शीतलता में बची रही। मेरे प्यारे बच्चे!

प्रेमानन्द—मूर्त्तिमती करुणे! तुम्हारा जीवन सफल हो। स्त्री जाति का सुन्दर उदाहरण तुमने दिखाया। नरदेव को मार कर भी तुमने जिलाया।

चन्द्रलेखा—अरे नरदेव...मैं तो पहचान भी न सकी .....

नरदेव—देवि, क्षमा हो। अधम के अपराध क्षमा हों।

(बच्चे को गोद में लेता है)

चन्द्रलेखा—राजन्, रूप की ज्वाला ने तुम्हें दग्ध कर दिया, कामना ने तुम्हें कलुषित कर दिया, क्या मेरा कुछ इसमें सहयोग था। नहीं; इस सोने के रङ्ग ने तुम्हारी आँखों में कमल रोग उत्पन्न कर दिया। तुम्हें सर्वत्र चम्पकवर्ण दिखलाई देने लगा। पर क्या यह रङ्ग ठहरेगा। किन्तु इस दुखद घटना का इतिहास

साक्षी रहेगा, तुम्हारी दुर्बलता की घोषणा किया करेगा। परमात्मा तुम्हें अब भी शान्ति दे।

विशाख—(प्रवेश करके)—यह क्या, तुम नरदेव हो? अभी जीवित हो!

प्रेमानन्द—विशाख, वत्स! प्रतिहिंसा पाशववृत्ति है। नरदेव अब सन्यासी हो गया है। उसे राष्ट्र से कोई काम नहीं। यदि मेरा कहा मानो, तो तुम अपने उस सज्जनता के हृदय से इन्हें क्षमा कर दो, और इस बालक को ले जाकर प्रजा के अनुकूल राजा बनने की शिक्षा दो। तुम्हें भी कर्म्म करने के बाद मेरे ही पथ पर शान्ति पाने के लिये आना होगा।

विशाख—जैसी आज्ञा।

नरदेव—भाई विशाख, मुझे क्षमा करना।

विशाख—भगवान् क्षमा करें।

नरदेव—शान्ति के लिये भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये।

प्रेमानन्द—प्रार्थना करो, तुम्हें शान्ति मिलेगी।

नरदेव—(हाथ जोड़ कर बैठ कर—)

हृदय के कोने कोने से
स्वर उठता है कोमल मध्यम, कभी तीव्र होकर भी पञ्चम,
मन के रोने से।
इन्दु स्तब्ध होकर अविचल है; भाव नहीं कुछ, वह निर्मल है
हृदय न होने से।

उसे देख सन्तोष न होता, वह मेघों में छिप कर सोता,
तेजस खोने से।
तुम आओ तब अच्छा होगा, हृदय भाव कुछ सच्चा होगा,
तेरे टोने से।
किन्तु हुआ अब लज्जित हूँ मैं, कर्म फलों से सज्जित हूँ मैं,
उनके बोने से।
आवृत हो अतीत सब मेरा, तूने देखा, सब कुछ मेरा,
पर्दा होने से।
हृदय के कोने कोने से॥

स्वर-लिपि

स्वर-लिपि के संकेत-चिन्हों का ब्योरा

१—जिन स्वरों के नीचे बिन्दु हो, वे मंद्र सप्तक के, जिनमें कोई बिन्दु न हो वे मध्य सप्तक के, तथा जिनके ऊपर बिन्दु हो वे तार सप्तक के हैं। जैसे—स़, स, सं।

२—जिन स्वरों के नीचे लकीर हो वे कोमल हैं। जैसे—रे॒, ग॒, ध॒, नि॒। जिनमें कोई चिह्न न हो वे शुद्ध हैं। जैसे—रे, ग, ध, नि। तीव्र मध्यम के ऊपर खड़ी पाई रहती है—म॑।

३—आलंकारिक स्वर (गमक) प्रधान स्वर के ऊपर दिया

ध म
है; यथा—प म प

४—जिस स्वर के आगे बेड़ी पाई हो '–' उसे उतनी मात्रा तक दीर्घ करना जितनी पाइयाँ हों। जैसे, स–, रे– –, ग– – –,।

५—जिस अक्षर के आगे जितने अवग्रह ऽ हों उसे उतनी मात्रा तक दीर्घ करना। जैसे रा ऽ म, सखी ऽऽ, आ ऽऽऽ ज।

६—'‿' इस चिन्ह में जितने स्वर या बोल रहें, वे एक मात्रा काल में गाए या बजाए जायँगे। जैसे—सरे‿, गम‿।

७—जिस स्वर के ऊपर से किसी दूसरे स्वर तक चन्द्राकार लकीर जाय, वहाँ से वहाँ तक मींड समझना । जैसे—

स--म, रे--प, इत्यादि ।

८—सम का चिन्ह ×, ताल के लिये अंक और खाली का द्योतक ० है। इनका विभाजन खड़ी लम्बी रेखाओं से दिखाया गया है।

९—'❀' यह विश्रांति का चिन्ह है। ऐसे जितने चिन्ह हों उतने मात्रा काल विश्रान्ति जानना ।

(पृष्ठ ३)

भीमपलासी—तीन ताल

स्थायी

×	२	०	३
		रे	नि स ग म
		स	खी ऽ री ऽ
प प प प	गम पनि प म	ग रे स रे	नि स ग म
दु ख कि स	कोऽ ऽऽ हैं ऽ	क ह ते, स	खी ऽ री ऽ,
प — प प	ग — म —	गम पनि प म	ग रे स —
चो ऽ त र	हा ऽ है ऽ	जीऽ ऽऽ व न	सा ऽ रा ऽ
गम पनि प नि	नि नि म प	ग रे स रे	नि स ग म
केऽ ऽऽ व ल	दु ख ही ऽ	स ह ते, स	खी ऽ री ऽ,

अन्तरा

×	२	०	३
		रे	नि स ग म
		स	खी ऽ रीऽ,
प प प —	ग — म ग	— म ग म प	म ग — रे स
क रु णा ऽ	का ऽ न्त क	ऽ रुप नाऽ ऽ	है ऽ ब स
रे नि — नि	स ग — म	प म प —	— — — —
दृ था ऽ न	प ड़ी ऽ दि	खा ऽ ई ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
म प नि नि	सं सं सं सं	निसं गं रें सं	नि ध प —
नि ऽ र्द य	ज ग त क	ठोऽ ऽ र ह	द य है ऽ
गमपनि म प	सं — नि प	म ग रे स	नि स ग म
औऽ ऽऽ र कं	हीं ऽ च ल	र ह ते, स	खी ऽ रीऽ,

(पृष्ठ ६)

झिंझोटी-खम्माच—तीन ताल

स्थायी

		०	३
		स रे स ग	ग ग ग —
		जी ऽ व न	भ र आ ऽ
×	२		
ग म प प	प — प —	ग म प —	प ध प ध नि
नं ऽ द म	चा ऽ वे ऽ,	खा ऽ ये ऽ	पी ऽ ये ऽ ऽ
पध निसं नि ध	प म ग —		
जोऽ ऽऽ कु छ	पा ऽ वे ऽ,		

अन्तरा

×	२	०	३
		ग म प नि	ध — ध —
		लो ऽ ग क	हैं ऽ छो ऽ
ध — नि ध	प ध प —	ग म प प	प — ध नि
ड़ो ऽ थ ह	तृ ऽ ष्णा ऽ,	लि प ट र	ही ऽ है ऽ
ध — प म	ग म ग —	स रे स म	ग — ग —
साँ ऽ पि न	कृ ऽ ष्णा ऽ,	सु ख द ब	ना ऽ सं ऽ
ग म प प	प प प —	ग म प प	प ध पध नि
सा ऽ र कु	ह क है ऽ,	क्यों ऽ छु ट	का ऽ राऽ ऽ
पध निसं निध पम	ग म ग —		
पाऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ	वे ऽ ऽ ऽ,		

(पृष्ठ ८)

भैरवी—तीन ताल

स्थायी

			२				०				३			
	स	स	सरे	गम	ध	प	ग	म	ग	—	स	रे	स	नि
×	उ	ठ	तीऽ	ऽऽ	है	ऽ	ल	ह	र	ऽ	ह	री	ऽ	ह
नि														
स —														
री ऽ,														

अन्तरा

				२				०				३			
		स	स	प	—	प	प	प	ध	नि	सं	ध	नि	ध	प
		प	त	वा	ऽ	र	पु	रा	ऽ	नी	ऽ	प	व	न	प्र
×															
म	प	ग	—	रेग	मप	ध	प	म	ग	रे	स	नि	स	ध	नि
ल	य	का	ऽ	कैऽ	ऽऽ	सा	ऽ	क्षि	ये	ऽ	प	छे	ऽ	ड़ा	ऽ
स	—	ध	—	म	—	म	म	ध	ध	नि	—	सं	सं	—	रें
है	ऽ,	नि	ऽ	हत	ऽ	ब्ध	ज	ग	त	है	ऽ	क	हीं	ऽ	न
सं	—	नि	नि	नि	नि	नि	—	नि	सं	—	सं	निसं	रें	सं	नि
हीं	ऽ	कु	छ	फि	र	भी	ऽ	म	चा	ऽ	ब	खेऽ	ऽ	ड़ा	ऽ
ध	प														
है	ऽ														

भूपाली-कहर्वा-इंग्लिश ट्यून

स्थायी

	२	×	२
स	धृ — स —	रे रे ग ग	प — ग —
म	चा ऽ है ऽ	ज ग भ र	मैं ऽ अं ऽ
×			
स — स ❀	❀ ❀ ❀ ❀	सं सं प —	ध — ग —
धे ऽ र, ❀	❀ ❀ ❀ ❀	उ ल टा ऽ	सी ऽ धा ऽ
प — रे रे	ग ग स —	स स — ग	— प ध —
जो ऽ कु छ	स म झा ऽ	व ही ऽ हो	ऽ ग या ऽ
सं — सं रें	सं रें ध सं	प ध ग प	रे ग स रे
ढे ऽ र, म	चा ऽ है ऽ	ज ग भ र	मैं ऽ अं ऽ
स — स			
धे ऽ र,			

अन्तरा

×	२	×	२
ग — ग प	— प ध —	सं — सं —	सं — सं —
बु ऽ द्धि अं	ऽ ध के ऽ	जै ऽ से ऽ	को ऽ ई ऽ
प — प —	ध सं — रें	गं — — —	— — — गं
हा ऽ थों ऽ	ल गी ऽ ब	टे ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ र,
सं रें — सं	ध प ग —	रे ग प ध	सं — सं —
कि सी ऽ त	र ह से ऽ	क रो ऽ उ	ढूं ऽ ढू ऽ
प ध ग प	रे ग स रे	स — स	
औ ऽ रों ऽ	का ऽ ध न	ढे ऽ र,	

(पृष्ठ १६)

पीलू जंगला—तीन ताल

स्थायी

×				२				०				३			
			स	—	ध	प	ध	म	प	ग	म	रे	ग	स	नि़
			कुं	ऽ	ज	में	ऽ	बं	ऽ	शी	ऽ	ब	ज	ती	ऽ
स	—	—	स	—	ध	प	ध	नि़	नि़	नि़	—	नि़	नि़	—	नि़
है	ऽ	ऽ,	कुं	ऽ	ज	में	ऽ,	स्व	र	में	ऽ	खिं	चा	ऽ	जा
—	नि़	नि़	—	स	स	स	—	ग	—	ग	ग	ग	म	प	—
ऽ	र	हा	ऽ	म	न	क्यों	ऽ	बु	ऽ	द्धि	ब	र	ज	ती	ऽ
म	—	—													
है	ऽ	ऽ,													

अन्तरा

×				२				०				३			
			स	—	ध	प	ध	ग	म	प	—	नि	—	नि	नि
			कुं	ऽ	ज	मैं	ऽ,	स	ऽ	न्ध्या	ऽ	रा	ऽ	ग	म
नि	—	सं	—	सं	—	सं	—	नि	सं	रें	गं	रें	सं	नि	ध
यी	ऽ	ता	ऽ	नों	ऽ	का	ऽ	भू	ऽ	ष	ण	स	ज	ती	ऽ
प	—	—	—	—	—	—	—	प	सं	नि	सं	ध	नि	प	ध
है	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ,	दौ	ऽ	ड़	च	लूं	ऽ	दे	ऽ
म	प	ध	प	म	ग	रे	स	ग	ग	ग	—	ग	म	प	—
खूं	ऽ	ल	ऽ	ज्ञा	ऽ	अ	ब	मु	झ	को	ऽ	त	ज	ती	ऽ
म	—	—													
है	ऽ	ऽ													

(पृष्ठ १६)

धुन-गारा—दादरा

स्थायी

										ध़	—
										आ	ऽ
×			२			×			२		
स	स	—	स	रे	—	स रे	ग म	—	ग	—	—
ऽ	ज	ऽ	म	धु	ऽ	पी ऽ	ऽ ऽ	ऽ	ले	ऽ	ऽ
नि़	—	स	नि़	—	स	नि़	स	रे	स	—	नि़
यौ	ऽ	व	न	ऽ	ब	स	ऽ	ऽ	त	ऽ	खि
ध़	—	—	—	ध़	—	स	स	—	स रे (इत्यादि)		
ला	ऽ	ऽ,	ऽ	आ	ऽ	ऽ	ज	ऽ	म धु,		

अन्तरा

×	२	×	२
म — म म	म म म म	म — म ग	— — — —
शी ऽ त ल	नि भृ त प्र	भा ऽ त में	ऽ ऽ ऽ ऽ
स — स स	स स नि —	ध़ — — —	— — — ध़
बै ऽ ठ हृ	द् य के ऽ	कुं ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ज,
ध — ध ध	ध ध ध ध	प ध म ग	— — — —
को ऽ कि ल	क ल र व	क र र हा	ऽ ऽ ऽ ऽ
स स ग —	म — प प	म ग रे स	नि ध़ — —
ब र सा ऽ	ता ऽ सु ख	पुं ऽ ऽ ऽ	ऽ ञ्ज ऽ ऽ

(पृष्ठ २१)

भैरवी—दादरा

स्थायी

																		स	—
																		तू	ऽ
×			२			×			२			×			२				
प	—	प	प	—	ध	म	प	म	ग	रे	ग	स	—	रे	ग	—	रे		
खो	ऽ	ज	ता	ऽ	कि	से	ऽ	अ	रे	आ	ऽ	नं	ऽ	द	रू	ऽ	प		
स	—	—	—																
है	ऽ	ऽ,	ऽ,																

अन्तरा

					प ध
					उ स
×	२	×	२	×	२
म — म	ध — नि	सं — सं	सं सं —	नि — नि	नि — सं
प्रे ऽ म	के ऽ प्र	भा ऽ व	ने पा ऽ	ग लऽ ब	ना ऽ द्वि
ध नि ध	प प प	प — प	प — ध	म प म	ग रे ग
या ऽ ऽ	ऽ, स ब	को ऽ म	म ऽ त्व	मो ऽ ह	का आ ऽ
स स रे	ग — रे	स — —	— स सं	सं — सं	सं — सं
स व पि	ला ऽ दि	या ऽ ऽ	ऽ, अ प	ने ऽ पै	आ ऽ प
नि सं नि	ध प प	प प प	प ध नि	प — —	—
म र र	हा य ह	भ्र म आ	नू ऽ प	है ऽ ऽ	ऽ,

(पृष्ठ २६)

झिंझोटी खम्माच—तीनताल

स्थायी

×	२	०	३
	रे ग	स रे स म	ग — ग —
	दे ऽ	खी ऽ न य	नों ऽ ने ऽ
ग म प प	प प म ग	म म प —	प ध प सं
ए ऽ क झ	ल क व ह	छ बि की ऽ	छ टा ऽ नि
नि ध प म	ग — रे ग	स रे स म	ग ग ग ग
रा ऽ ली ऽ	थी ऽ, म धु	पी ऽ क र	म धु प र
ग म प —	प — म ग	म — प —	प ध पध सं
हे ऽ सो ऽ	ये ऽ क म	लों ऽ में ऽ	कु छ कुऽ छ
पध निसं निध पम	ग —		
लाऽऽ ऽऽ लीऽ ऽऽ	थी ऽ,		

अन्तरा

		०	३
	ग म	ग प म नि	ध — ध —
	सु र	भि त हा ऽ	ला ऽ पी ऽ
×	२		
ध नि ध नि	ध प म ग	म — प प	प — पध सं
चु के ऽ प	ल क व ह	मा ऽ द क	ता ऽ मऽ त
नि ध प म	ग — रे ग	स रे स म	ग ग ग —
वा ऽ ली ऽ	थी ऽ, भो ऽ	ले ऽ मु ख	प र वे ऽ
ग म प प	प प म ग	म — प प	— ध पध सं
खु ले ऽ अ	ल क सु ख	की ऽ क पो	ऽ ल पऽ र
पध निसं निध पम	ग —		
लाऽ ऽ ऽ लीऽ ऽऽ	थी ऽ,		

गारा—दादरा

स्थायी

					प़ हि
×	२	×	२	×	२
ध़ नि़ —	स — —	— — ग	ग ग —	म — —	ग रे —
ये ऽ ऽ	मैं ऽ ऽ	ऽ ऽ चु	भ ग ऽ	ई ऽ ऽ	हां ऽ ऽ
स नि़ स	— नि़ —	स रे —	स नि़ —	ध़ — —	नि़ —
ऐ ऽ सी	ऽ म ऽ	धु र ऽ	मु स ऽ	क्या ऽ ऽ	न ऽ,

अन्तरा

×	२	×	२	×	२
ध़ — —	ध़ — नि़	स — —	स स —	ग — —	ग — म
लू ऽ ऽ	ट ऽ लि	या ऽ ऽ	म न ऽ	ऐ ऽ ऽ	सा ऽ च
ग रे —	स — —	ग — —	ग — ग	ग म —	प — ध
ला ऽ ऽ	या ऽ ऽ	नै ऽ ऽ	न ऽ का	ती ऽ ऽ	र ऽ क
म ग —	— — रे	रे ग —	रेग म —	— — ग	रे ग —
मा ऽ ऽ	न ऽ, हि	ये ऽ ऽ	मेंऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ चु	भ ग ऽ
रे — —	स नि़ —	नि़ — —	— नि़ —	स रे —	स नि़ —
ई ऽ ऽ	हाँ ऽ ऽ	ऐ ऽ सी	ऽ म ऽ	धु र ऽ	मु स ऽ
ध़ — —	नि़ —				
क्या ऽ ऽ	न ऽ,				

(पृष्ठ ३६)

इंग्लिश ट्यून, कोरस-गान, कहरवा

स्थायी

			२
		सं	नि सं ध नि
		ल	गा ऽ दो ऽ
×	२	×	
प ध म प	ग म रे ग	म — — सं	नि सं ध नि
ग ह ने ऽ	का ऽ बा ऽ	ज़ा ऽ र, ल	गा ऽ दो ऽ,
स स स —	रे — रे —	ग ग — म	— म म —
कु छ है ऽ	चि ऽ न्ता ऽ	न हीं ऽ औ	ऽ र क्या ऽ
प प — प	ध — नि —	सं — — —	सं — सं
मि लै ऽ न	हीं ऽ आ ऽ	हा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ र,

अन्तरा

×	२	×	२
सं — रं सं	— सं सं रें	नि — नि नि	— नि नि सं
ना ऽ क छे	ऽ द लो ऽ	का ऽ न छे	ऽ द लो ऽ
ध नि ध नि	प ध म प	ध — — —	— — — ध
हो ऽ वैं ऽ	छे ऽ द ह	ज़ा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ र,
स — स —	रे — रे —	ग ग ग —	ग — ग —
सो ऽ ना ऽ	चाँ ऽ दी ऽ	उ न में ऽ	डा ऽ लो ऽ
रे रे रे —	ग — प —	म — — —	— — म
त ब हो ऽ	पू ऽ रा ऽ	प्या ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ र,

(पृष्ठ ४३)

धुन चलता—कहरवा

स्थायी

			ग ग
			मे रे
×	२	×	२
ग ग ग म	रेग रेग स ग	ग — ग म	म — ग म
म न को लु	भाऽ ऽऽ के क	हां ऽ को च	ले ऽ, मे रे
प — प प	प — प ग	ग — ग म	म —
प्या ऽ रे मु	झे ऽ क्यों भु	ला ऽ के च	ले ऽ,

अन्तरा पहिला

×				२				×				२			
स	—	रे	रे	रे	—	स	ग	ग	—	ग	म	रे	ग	स	—
पे	ऽ	से	ज	ले	ऽ	ह	म	प्रे	ऽ	मा	ऽ	न	ल	में	ऽ
ग	म	प	प	प	—	प	ग	ग	—	ग	म	म	—		
जै	ऽ	से	न	हीं	ऽ	थे	प	तं	ऽ	ग	ज	ले	ऽ,		

अन्तरा दूसरा

×				२				×				२			
ग	—	ग	म	प	—	नि	सं	नि	—	नि	सं	ध	नि	प	—
प्री	ऽ	ति	ल	ता	ऽ	कु	म्ह	ला	ऽ	इ	ह	मा	ऽ	रा	ऽ
नि	नि	नि	सं	—	सं	प	प	ध	नि	ध	प	म	—		
वि	ष	म	वा	ऽ	यु	ब	न	क	र	क्यों	च	ले	ऽ,		

बिहाग—तीन ताल

स्थायी

	२	०	३
		ध	
ग	म प निध नि	सं — नि प	गम पम ग नि़
मा	ऽ न लूंऽ ऽ	क्यों ऽ न उ	सेऽ ऽऽ भ ग
×			
नि़			
स — स नि़	— नि़ स —	ग म प मं	ग म ग नि़
वा ऽ न, मा	ऽ न लूँ ऽ	क्यों ऽ न उ	से ऽ भ ग
नि़			
स — स			
वा ऽ न,			

अन्तरा

×	२	०	३
ग	म प निध नि	प़ प़ नि़ —	स — ग —
मा	ऽ न तूँऽ ऽ,	न र हो ऽ	या ऽ कि ऽ
ग म प —	ग — (नि़)स —	ग ग ग म	प म ग म
अ र हो ऽ	को ऽ ई ऽ	नि र ब ल	हो ऽ ब ल
ग — नि़ —	स — स —	ग म प नि	— नि सं सं
वा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ न ऽ,	कि ऽ न्तु को	ऽ श क त
नि — नि —	प प नि —	ग — ग म	प — गम पनि
णा ऽ का ऽ	जि स का ऽ	हो ऽ पू ऽ	रा ऽ देऽ ऽऽ
प म ग			
दा ऽ न,			

(पृष्ठ ५६)

धुन अल्हैया मिश्रित—तेवरा

स्थायी

×			२		३		×			२		३	
ग	ग	ग	ग	—	ग	म	रे	ग	रे	म	ग	स	स
क	र	र	हे	ऽ	हो	ऽ	ना	ऽ	थ	तु	म	ज	ब
रे	—	रे	ग	—	म	प	गम	पध	म	ग	—	—	—
वि	ऽ	श्व	मं	ऽ	ग	ल	काऽ	ऽऽ	म	ना	ऽ	ऽ	ऽ,
ग	—	ग	ग	—	म	प	रे	ग	रे	म	ग	स	—
क्यों	ऽ	र	हें	ऽ	चिं	ऽ	ति	त	इ	मीं	ऽ	क्यों	ऽ
रे	—	रे	ग	—	म	प	गम	पध	म	ग	—	—	—
दुः	ऽ	ख	का	ऽ	हो	ऽ	खाऽ	ऽऽ	म	ना	ऽ	ऽ	ऽ,

अन्तरा

×			२		३		×			२		३	
ध	—	ध	ध	—	ध	ध	ध	नि	ध	प	—	प	—
क्षु	ऽ	द्र	जी	ऽ	व	न	के	ऽ	लि	ये	ऽ	क्यों	ऽ
ग	—	ग	ग	म	प	ध	म	प	म	ग	—	—	—
क	ऽ	ष्ट	ह	म	इ	त	ने	ऽ	स	हें	ऽ	ऽ	ऽ,
ग	—	ग	ग	—	ग	म	रे	ग	रे	म	ग	स	स
क	ऽ	र्ण	धा	ऽ	र	स	म्हा	ऽ	ल	क	र	प	त
रे	—	रे	ग	म	प	—	गम	पध	म	ग	—	—	—
वा	ऽ	र	अ	प	नी	ऽ	थाऽ	ऽऽ	म	ना	ऽ	ऽ	ऽ,

(पृष्ठ ५९)

माँड—दादरा

स्थायी

					२
					ध प ध
					न दी ऽ
×	२	×	२	×	
म ग रे	स रे ग	स — —	— — —	म — म	म — म
नी ऽ र	स ऽ भ	री ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ,	नी ऽ र	से ऽ भ
प — —	ध रें सं	नि ध नि	प ध नि	प — —	— — —
री ऽ ऽ	न दी ऽ	नी ऽ र	से ऽ भ	री ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ,
मप धनि नि	नि — ध	प ध प	म प म	ग म ग	स रे ग
नीऽ ऽऽ र	से ऽ भ	री ऽ ऽ	न दी ऽ	नी ऽ र	से ऽ भ
स — —					
री ऽ ऽ,					

अन्तरा—कहरवा में

×	२	×	२	×	२
म — म म	म म म —	प — प नि	— — — —	प प — प	ध - नि रें
सं ऽ चि त	ज ल ले ऽ	शै ऽ ल का	ऽ ऽ ऽ ऽ,	हु ई ऽ न	दी ऽ में ऽ
सं — — —	— — सं —	पध नि नि नि	नि - प ध	म ध प म	ग रे स -
बा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ढ़ ऽ,	माऽ ऽ न स	में ऽ ए ऽ	क ऽ अ था	ऽ ऽ ऽ ऽ,
स प म ग	रे स रे ग	स — — —	— — स —	(नदी नीर से भरी—	
इ ध र प्र	ण य भी ऽ	गा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ढ़ ऽ	इत्यादि)	

पुरबी—तीनताल

स्थायी

×	२	०	३
	ग — — ग	— — ❀ रे	ग रे — स
	दी ऽ न ऽ	ऽ ऽ ❀ दुः	खी न ऽ र
नि़ — रे ग	स — रे —	रे ग म —	— ग रे ग
हे ऽ को ऽ	ई ऽ सु ऽ	खी ऽ हों ऽ	ऽ स ऽ ब
स — — स	ग — — ग	— — ❀ रे	ग रे — स
लो ऽ ऽ ग,	दे ऽ श ऽ	ऽ ऽ ❀ स	मृ द्धि ऽ प्र
नि़ — स रे	स — रे रे	— — ❀ रे	ग म — ग
पू ऽ रि त	हो ऽ ज न	ऽ ऽ ❀ ता	ऽ स ऽ ह
रे ग रे स			
यो ऽ ऽ ग,			

अन्तरा

×	२	०	३
		प —	प प — प
		कू ऽ	ट नी ऽ ति
म प म प	म ग रे —	— रे रे रे	ग म — ग
हू ऽ टे ऽ	ज ग में ऽ	ऽ स ब में	ऽ स ऽ ह
रे स — स	ग — ग —	— — ❀ रे	ग रे — स
थो ऽ ऽ ग,	भू ऽ प ऽ	ऽ ऽ ❀ प्र	जा स ऽ म
नि़ नि़ रे —	स — रें रे	— — ❀ रे	ग म — ग
द र शी ऽ	हों ऽ त ज	ऽ ऽ ❀ क	र स ऽ ब
रे स — स			
हों ऽ ऽ ग			